

हरिगंधा

साहित्यिक मासिक

अंक : 333, मई, 2022

वैशाख-ज्येष्ठ 2079



हरियाणा साहित्य अकादमी

6 मई, 2022 : महाकवि सूरदास जयंती समारोह, फरीदाबाद

हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा महाकवि सूरदास की 544वीं जयंती के अवसर पर 06 मई, 2022 को सीही, फरीदाबाद में महाकवि सूरदास जयंती समारोह का आयोजन किया गया। अकादमी द्वारा सूरदास जयंती समारोह का शुभारंभ प्रातः 10:00 फरीदाबाद के सेक्टर- 8 में स्थित सूर स्मारक स्थल में सूरदास प्रतिमा पर माल्यार्पण के साथ हुआ। महाकवि सूरदास की प्रतिमा पर माल्यार्पण करते हुए मुख्य अतिथि स्थानीय विधायक श्री नरेंद्र गुप्ता ने यह विश्वास दिलाया कि सूर स्मारक ट्रस्ट के पुनर्निर्माण कार्य को शीघ्र पूरा करवाया जाएगा। उन्होंने कहा कि- “फरीदाबाद के सीही गांव में आज से 544 वर्ष पूर्व जन्मे महाकवि संत सूरदास हमारे देश ही नहीं विश्व हिंदी साहित्य की एक अनुपम धरोहर हैं। इस महान संत के जीवन पर नजर डालें तो विश्वास नहीं होता जन्मांध होने पर भी उन्होंने सवा लाख पदों की रचना की। संत सूरदास का साहित्य देश व समाज में फैले हुए वैमनस्य घृणा और कड़वाहट भरे परिवेश को आपसी भाईचारे एवं सद्भाव से भरने की प्रेरणा देता है। महाकवि सूरदास ने श्रीकृष्ण की छवि को ग्रंथों से निकालकर हर घर के आंगन में विराजमान किया। आज भारतीय जनमानस अपने बच्चों में श्रीकृष्ण की छवि देखता है, यह सब उनकी रचनाओं के माध्यम से ही हुआ है।”

इस अवसर पर अकादमी द्वारा 11:00 बजे मैगपाई पर्यटक केंद्र फरीदाबाद में काव्य गोष्ठी का आयोजन भी किया गया। इस काव्य गोष्ठी में श्री जयदेव शर्मा, अध्यक्ष, सूर स्मारक ट्रस्ट भी विशिष्ट अतिथि के रूप में विराजमान रहे। काव्य गोष्ठी में रचना पाठ करते हुए प्रसिद्ध गजलकार माधव कौशिक ने कहा कि- सूर तन मन सूर जीवन/सूर्य ही पहचान है/सूर ही अपनी अस्मिता/सूर ही हिंदुस्तान है। वरिष्ठ कवि डॉ. उपकार सागर भारद्वाज ने महाकवि सूरदास का आह्वान करते हुए कहा- सूर कवियों का है तू कवि/तेरा काव्य है ईश्वर की छवि/मेरा काव्य भी अपने जैसा बना/मेरे गीत भी गाए तेरी ही कला।

प्रसिद्ध गजलकार हरeram समीप का कहना था कि-



अकादमी द्वारा प्रकाशित 'सूरदास' पुस्तिक का लोकप्रण करते हुए श्री नरेंद्र गुप्ता, विधायक फरीदाबाद, साथ में हैं- डॉ. चन्द्र त्रिखा (बाएं) तथा श्री जयदेव शर्मा व श्री माधव कौशिक (दाएं)



आओ हम उजियार दे, यह धरती यह व्योम।

तुम बन जाओ वर्तिका, मैं बन जाऊं मोम।

कवि अलीम बेताब का अंदाज-ए-बयां यूं था- सुख-दुख सबके जीवन में आते जाते रहते हैं/सुख दुख का भी जीवन में एहसास जरूरी होता है। फरीदाबाद के प्रसिद्ध कवि दीपक गुप्ता ने कहा- अगर मैं झूठ बोलूं तो मेरा किरदार मरता है/जो बोलूं सच तो फिर भूखा परिवार मरता है। अकादमी के महाकवि सूरदास सम्मान से सम्मानित सुदर्शन रत्नाकर की पिता कविता को भरपूर दाद मिली। पिता तो बरगद है और मैं कीकर, न टहनी है न छाया/फिर कौन आएगा मेरे पास/ कोई नहीं आएगा मेरे पास।

कन्या भ्रूण हत्या पर एक मार्मिक कविता प्रस्तुत करते हुए राकेश नमित ने कहा- मुझे दुनिया में आने का अधिकार दे दो मां/जो भाई को दिया तुमने मुझे वह प्यार दे दो मां/तुम्हारे चाहने से ही तुम्हारी कोख में आई/जन्म देकर मुझे जीने का उपहार दे दो मां।

गीतकार मोहन शास्त्री ने कहा- चेहरे पर मुस्कान सजाकर रखना तुम/बस इतनी पहचान बना कर रखना तुम/ देश हमारा रहे सुरक्षित यूं करना दिल में हिंदुस्तान बसा कर रखना तुम।

इसी क्रम में डॉ. वेद व्यथित सुरेश कौशिक और अंजू दुआ जैमिनी ने भी राष्ट्रप्रेम से पूर्ण कविताएं प्रस्तुत की। श्रीमती आशमा कौल, इंदु गुप्ता, नमिता राकेश, कमल कपूर, अजय अज्ञात, प्रदीप पराग सहित कई रचनाकारों ने अपनी कविताएं प्रस्तुत की।

फरीदाबाद के लेखकों का आभार प्रकट करते हुए अकादमी निदेशक डॉ. चन्द्र त्रिखा ने आश्वासन दिलाया कि महाकवि सूरदास शोध संस्थान स्थापित करने के लिए अकादमी भरपूर प्रयास करेगी। इस अवसर पर अकादमी द्वारा महाकवि सूरदास पर प्रकाशित लघु पुस्तिका के अतिरिक्त श्रीमती कमल कपूर की तीन पुस्तकों तथा श्रीमती आशा कौल की दो कृतियों का लोकार्पण भी किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. विजेन्द्र ने किया।



हरिगंधा

साहित्यिक मासिकी
अंक : 333, मई, 2022
वैशाख-ज्येष्ठ 2079

- प्रधान संरक्षक एवं अध्यक्ष
मनोहर लाल
मुख्यमंत्री, हरियाणा
- प्रधान सम्पादक
वी. उमाशंकर, भा.प्र.से.
प्रधान सचिव, हरियाणा सरकार
सूचना, जनसंपर्क व भाषाएँ
एवं कार्यकारी उपाध्यक्ष, अकादमी
- प्रबंध सम्पादक
डॉ. अमित अग्रवाल, भा.प्र.से.
महानिदेशक, सूचना, जनसंपर्क एवं भाषाएँ
- सम्पादक
डॉ. चन्द्र त्रिखा
निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी
- सम्पादन सहयोग
मुकेश लता
- टंकण व साज-सजा
दिनेश कुमार
- वार्षिक चन्दा : 150 रुपये
- एक प्रति : 15 रुपये

संपादक तथा हरियाणा साहित्य अकादमी का लेखकों के विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। ये उनके अपने विचार हैं।

सम्पर्क :

निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी
अकादमी भवन पी-16, सेक्टर 14
पंचकूला - 134113 (हरियाणा)
दूरभाष : 0172-2565521, 2581807
वेबसाईट : haryanasahityaakademi.in
ई-मेल : harigandhapatrika@gmail.com



इस अंक में

सम्पादकीय	3	० टिफिन : डॉ. श्रीगोपाल नारसन	50
धरोहर		हरियाणवी कहानी	
० महाकवि सूरदास : डॉ. चन्द्र त्रिखा	4	० नाम : संगीता बैनीवाल	52
आलेख		व्यंग्य	
० सूर-साहित्य की प्रासंगिकता : हरेराम समीप	8	० सिफारिश ऊपरवाले की : बलदेव राज भारतीय	54
० शहर-शहर स्थायी स्तम्भ	12	उड़िया कहानी	
फरीदाबाद : शेख फरीद से सूरदास तक		० दुर्घटना : मूल- डॉ. दाशरथि भूयाँ	56
० भूले बिसरे रंग : राजकिशन नैन	14	अनुवाद : डॉ. भगवान त्रिपाठी	
काव्य		लघुकथाएं : 18, 40, 49, 51	
० चक्रवस्तु ब्रिज नारायण	19	पुस्तक समीक्षा	61
० प्रेम धवन	19		
० सुभाष रस्तोगी	20		
० कृष्ण गोपाल विद्यार्थी	21		
० डॉ. इन्द्रा रानी राव	21		
० वन्दना यादव	22		
० सुरेश कुमार कौशिक	22		
० राजकुमार निजात	23		
० पृथ्वीसिंह बैनीवाल बिश्नाई	24		
० सूरत सिंह 'आर्य'	25		
० राजपाल यादव	26		
० प्रदीप शर्मा	27		
साक्षात्कार			
० पुनर्मूल्यांकन आलोचना का निष्कर्ष है :	28		
डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल'			
कथा			
० जशन : हरभगवान चावला	31		
० भूत का भय : महेन्द्र सिंह 'सागर'	34		
० कब आयेंगे पापा ? : अंकुश्री	41		
० बदलते रिश्ते : प्रियंका पाठक	47		



- कला पक्ष : राम प्रताप वर्मा



राखीगढ़ी का सत्य

ह

रियाणा के लिए 'राखीगढ़ी' में हुआ नया उत्खनन गौरव का विषय है। अब पुरातत्व सर्वेक्षण से यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरा है कि राखीगढ़ी, मोहेन्जोदाड़ो और हड़प्पा से भी पुरानी सभ्यता का शहर है। कुछ तथ्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि 3500 ईसा पूर्व भारत में एक पूर्व विकसित सभ्यता थी।

हिसार जिले के गांव राखीगढ़ी में पहली बार 1963 में खुदाई की गई थी और तब इसे सिंधु-सरस्वती सभ्यता का सबसे बड़ा नगर माना गया था। उस समय के शोधार्थियों ने प्रमाण सहित यह घोषणा की थी कि जमीन में दफन यह शहर कभी मोहेन्जोदाड़ो और हड़प्पा से भी बड़ा रहा होगा। अब तक यही माना जाता रहा है कि पाकिस्तान स्थित हड़प्पा और मोहेन्जोदाड़ो ही सिंधुकालीन सभ्यता के बड़े नगर थे। राखीगढ़ी में खुदाई और शोध का काम एक-एक कर चलता रहा। 1977 से लेकर अब तक चार बार अधिकृत रूप से खुदाई हुई है और जो कुछ भी मिला है, वह सिंधु-सरस्वती सभ्यता को एक खुली और विस्तृत दृष्टि से देखने को मजबूर कर रहा है।

बीच में राखीगढ़ी में उत्खनन का काम बंद भी रहा क्योंकि राजकीय अनुदानों के दुरुपयोग का मामला उछला तो सीबीआई को इसकी जांच करना पड़ी थी। छह वर्ष पहले ऐसी रिपोर्ट भी सामने आई थी कि कुछ ग्रामीणों और कुछ पुरातत्व तस्करों ने अवैध रूप से कुछ जगह खुदाई की थी और कुछ दुर्लभ अवशेष अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भी बेचे गए। राखीगढ़ी का पुरातात्विक महत्व विशिष्ट है। इस समय यह क्षेत्र पुरातत्व विशेषज्ञों की दिलचस्पी और जिज्ञासा का केंद्र बना हुआ है। खुदाई के दौरान हड़प्पाकालीन सभ्यता के अवशेषों का बारीकी से अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि इतने वर्ष पहले भी 'टाऊन

प्लानिंग' की अवधारणा थी। इसी बीच एक पुरानी आभूषण बनाने की फैक्ट्री भी मिली है। निःसंदेह एक बेहतर तकनीक का इस्तेमाल कर शहर बसाया गया था। ऐसी कुछ तकनीकों का इस्तेमाल आज हम शहर बसाने के लिए कर रहे हैं।

2014 में भी राखीगढ़ी की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं की रेडियो एवं कार्बन डेटिंग के अनुसार इन अवशेषों का संबंध हड़प्पा-पूर्व और प्रौढ़-हड़प्पा काल के अलावा उससे भी हजारों वर्ष पूर्व की सभ्यता से भी प्राप्त अवशेष इस सभ्यता को लगभग 6500 वर्ष पूर्व तक ले जाते हैं। सोने-चांदे के बर्तन, सिक्के, मूर्तियां आदि अनेक वस्तुएं भी मिली हैं। अप्रैल 2015 में भी खुदाई के दौरान चार नरकंकाल मिले इनमें तीन की पहचान पुरुष के रूप में और एक की महिला के रूप में हुई थी। इस बार की खुदाई में भी कई नरकंकाल मिले हैं जिनके नमूने डीएनए जांच के लिए भेज दिए गए हैं। खुदाई का इतिहास बताता है कि प्राचीन सभ्यताओं के साथ लूटमार और छेड़छाड़ भी बहुत की गई। मगर जो भी आज हो रहा है वो यही बताता है कि अविभाजित भारत में चार हजार वर्ष पहले की सभ्यता एवं निर्माण कलाएं पूरी तरह विकसित थी। खुदाई के दौरान मिले सामान से विशेषज्ञों का आकलन है कि यहां कोई बड़ा व्यावसायिक केंद्र भी रहा होगा। अब सब परतें खुलती जाएंगी। विशेषज्ञ मान रहे हैं कि हड़प्पाकाल का यह शहर पानी की कमी के चलते विलुप्त हुआ होगा। राखीगढ़ी की विरासत सभ्यता पर गर्व करने का विषय है लेकिन यह अभी अज्ञात है उस काल में या मोहेन्जोदाड़ो-हड़प्पा युग में साहित्य व संगीत का स्वरूप क्या था? यदि शोध यूं ही उत्साह सहित चलता रहा तो निश्चित है कि ये तथ्य भी उभरेंगे।

-डॉ. चन्द्र त्रिखा



• डॉ. चन्द्र त्रिखा

महाकवि सूरदास

1

6वीं शताब्दी के महाकवि संत सूरदास के जन्म स्थान को लेकर भले ही कितने विवाद रहे हों, यह निश्चित है कि- सूरदास का सर्वाधिक प्राचीन स्मारक सीही ग्राम (सेक्टर-8, फरीदाबाद) में है। उन्हें अधिकांश समीक्षक इसी सीही ग्राम की माटी की गंध से जुड़ा महान संत कवि मानते हैं।

हरियाणा ही एकमात्र ऐसा राज्य है जहां इस महान संत कवि के नाम पर सर्वोच्च साहित्य-सम्मान दिया जाता है। गत तीन दशकों में इस सम्मान को प्रदत्त किए जाने में निरंतरता बनी हुई है।

फरीदाबाद का सीही ग्राम अर्थात् सेक्टर- 8 ही संभवतः देश का एकमात्र स्थल है जहां सूर की स्मृति में एक विशाल उद्यान सरकार द्वारा स्थापित एवं संरक्षित है। अब यह तथ्य भी स्वीकार कर लिया गया है कि इस महान संत का जन्म वर्ष 1478 में हुआ था और उन्होंने नश्वर शरीर को 105 वर्ष की आयु में वर्ष 1583 में त्यागा था।

अब यह तथ्य भी स्वीकार कर लिया गया है कि वे जन्मांध थे। यद्यपि बिल्वमंगल आदि के प्रकरण भी उनके नाम से जोड़े गए, लेकिन वे पात्र, लोक संस्कृति के थे और उन्हें सूरदास के साथ केवल चक्षु-विहीन होने के नाते जोड़ा गया।

सूरदास महाप्रभु बल्लभाचार्य के वैष्णव सम्प्रदाय में औपचारिक रूप से दीक्षित किए गए थे। पुष्टि मार्ग सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों की सूची में उनका नाम शीर्ष पर रखा गया था।

सूरदास के जीवन पर फिल्में भी बनीं थीं। वर्ष 1939 में 'सूरदास' फिल्म का निर्माण, उस काल के प्रख्यात फिल्म निर्माता कृष्ण देव मेहरा ने किया था। वर्ष 1942 में चतुर्भुज जोशी ने 'भक्त सूरदास' फिल्म का निर्माण किया था और वर्ष 1988 में राम पाहवा ने 'चिंतामणि सूरदास' का निर्माण किया था। वैसे वर्ष 1919 में 'बिल्वमंगल' के नाम से फिल्म का निर्माण रुस्तमजी धोतीवाला ने किया। इसी नाम के साथ पहचान के लिए 'भगत सूरदास' का नाम भी कोष्ठक में दिया गया। वर्ष 1933 में 'चिंतामणि' के नाम से के. सदाशिव राव ने फिल्म का निर्माण किया। इसी नाम से वर्ष 1937 में भी वाईवी राव ने फिल्म बनाई थी।

'सूरदास' की लोकप्रियता का सहज अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1954 में 'बिल्वमंगल-सूरदास' पिनाकी भूषण मुखर्जी ने बनाई जबकि वर्ष 1996 में संजय विरमानी ने भी 'बिल्वमंगल की प्रतीक्षा' के नाम से फिल्म का निर्माण किया था।

सूरदास ने मूल रूप से ब्रज भाषा में ही लिखा। 'सूरसागर', 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' उनकी तीन प्रमुख कृतियां मानी जाती हैं। 'सूरसागर' में पदों की संख्या एक लाख से भी ऊपर है। मान्यता यही है कि सूरदास के कतिपाय श्रद्धालुओं ने भी सूर के नाम से ही इसमें पद जोड़े थे।

अब यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि सूरदास के पिता का नाम श्री रामदास सारस्वत था और मां का नाम जमुना देवी था। दोनों ही सीही ग्राम के ही मूल निवासी थे और कभी-

कभी आगरा के समीप स्थित गांव रूनुकता में भी चले जाया करते थे।

संत सूरदास की समकालीन मुगल सम्राट अकबर और समकालीन महान संत कवि तुलसीदास की वार्ताओं के प्रसंग भी मिलते हैं। एक मान्यता यह भी है कि सम्राट अकबर ने उन्हें दरबार में बुलाया था लेकिन उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि वह अपने इष्ट और अपने गुरु के अतिरिक्त किसी का भी आदेश स्वीकार नहीं करते। बाद में स्वयं अकबर अपने नवरत्न अब्दुरहीम खानखाना को साथ लेकर एक श्रद्धालु तोता के रूप में उनसे भेंट के लिए आए थे।

अपना पूरा जीवन कृष्ण को समर्पित करने वाले सूरदास एक संत होने के साथ-साथ महान कवि और संगीतकार भी थे। अपनी रचनाओं में उन्होंने श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। गोस्वामी हरिराय के 'भाव प्रकाश' के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के पास सीही नाम के गांव (अब फरीदाबाद का सेक्टर-8) में एक अत्यंत निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वहीं 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' के आधार पर वे 1478 ईस्वी में आगरा-मथुरा रोड पर स्थित रुनुकता नामक गांव में पैदा हुए थे। बाद में वे गऊघाट आकर रहने लगे लेकिन अधिकांश विद्वानों ने सीही ग्राम को ही जन्मस्थल माना है। अब इसी स्थल पर सूर की एक भव्य प्रतिमा भी स्थापित है और दोनों समय सूर के भजन गाए जाते हैं। समीप ही सटा है भव्य सूर स्मृति पार्क। संत सूरदास जब गऊघाट में रहते थे तो इसी पर इनकी मुलाकात बल्लभाचार्य से हुई और सूरदास उनके शिष्य बन गए।

प्रख्यात आलोचक श्याम सुंदर दास ने लिखा है कि 'सूर वास्तव में जन्मांध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मांध नहीं कर सकता।' वहीं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- 'सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अंधा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर हर समय



इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।' वहीं एक आम मत है कि सूरदास जन्म से ही अंधे थे, भगवान की कृपा से दिव्य-दृष्टि पाई थी, जिसके आधार पर उन्होंने कृष्ण-लीला का आंखों देखा जैसा वर्णन किया। गोसाई हरिराय ने भी सूरदास को जन्मांध बताया है।'

18 वर्ष की आयु में छोड़ा घर

उनके अनेक शिष्य हो गए थे और वे संत के रूप में जाने लगे। 18 वर्ष की अवस्था में उन्हें पूर्ण विरक्ति हो गई और वह यह स्थान छोड़कर आगरा और मथुरा के बीच यमुना के किनारे गऊघाट पर आकर रहने लगे। यहां पर ही वे संत श्री वल्लभाचार्य के संपर्क में आए और नसेगुरु दीक्षाली। वल्लभाचार्य ने ही उन्हें 'भगवान लीला' का अनवरत गुणगान करने की सलाह दी। इसके बाद उन्होंने यही नियमित क्रम बना लिया। श्रीकृष्ण का गुणगान शुरू कर दिया और इससे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। इससे पहले वह केवल दैन्य भाव से विनय के पद रचा करते थे।

निधन को लेकर मान्यताएं

कहते हैं कि सूरदास ने भक्ति के मार्ग को सर्वोपरि मानते हुए जीवन के अंतिम क्षण तक ब्रज में ही समय व्यतीत किया। सूर के निधन काल का कोई सटीक प्रमाण तो नहीं है लेकिन माना जाता है कि 105 वर्ष से अधिक की उम्र तक वे जिंदा रहे। कुछ विद्वानों के अनुसार 1581 ईस्वी में उन्होंने शरीर छोड़ दिया था। वहीं कुछ का कहना है कि सूर ने 1584 ईस्वी में पारसोली ग्राम में शरीर त्यागा था।



प्रमुख रचनाएं

सूरदास द्वारा लिखे गए पांच ग्रंथ बताए जाते हैं सूर सागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती और ब्याहलो। पहले तीन ग्रंथों के तो प्रमाण हैं लेकिन नल-दमयन्ती और ब्याहलो का प्रमाण नहीं मिलता। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। इनमें सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भगवान गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी आदि ग्रंथ सम्मिलित हैं। सूरसागर में करीब एक लाख पद होने की बात कही जाती है लेकिन नागरी प्रचारिणी सभा के वर्तमान संस्करणों में करीब पांच हजार पद ही मिलते हैं। सूर सारावली में 1107 छन्द हैं। इसकी रचना संवत् 1602 में होने का प्रमाण मिलता है। वहीं साहित्य लहरी 118 पदों की एक लघु रचना है। रस की दृष्टि से यह ग्रंथ शृंगार को कोटि में आता है।

महाकवि के कुछ चर्चित पद-

मेरो मन अनत कहां सुख पावै।

जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥

कमलनैन कौ छांड़ि महातम और देव को ध्यावै।

परमगंग कौ छांड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥

जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल खावै।

सूरदास, प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

भावार्थ : यहां भक्त की भगवान् के प्रति अनन्यता की ऊंची अवस्था दिखाई गई है। जीवात्मा परमात्मा की अंश-स्वरूपा है। उसका विश्रान्ति-स्थल परमात्मा ही है, अन्यत्र उसे सच्ची सुख-शान्ति मिलने की नहीं। प्रभु को छोड़कर जो इधर-उधर सुख खोजता है, वह मूढ़ है। कमल-रसास्वादी भ्रमर भला करील का कड़वा फल चखेगा? कामधेनु छोड़कर बकरी को कौन मूर्ख दुहेगा?

उधो, मन न भए दस बीस।

एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस ॥

सिथिल भई सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।

स्वासा अटकिरही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस ॥

तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।

सूरदास, रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस ॥

टिप्पणी : गोपियां कहती हैं, मन तो हमारा एक ही है, दस-बीस मन तो हैं नहीं कि एक को किसी के लगा दें और दूसरे को किसी और में। अब वह भी नहीं है, कृष्ण के साथ अब वह भी चला गया। तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की उपासना अब किस मन से करें? गोपियां कहती हैं, 'यों तो हम बिना सिर की-सी हो गई हैं, हम कृष्ण वियोगिनी हैं, तो भी श्याम-मिलन की आशा में इस सिर-विहीन शरीर में हम अपने प्राणों को करोड़ों वर्ष रख सकती हैं।' 'सकल जोग के ईस' क्या कहना, तुम तो योगियों में भी शिरोमणि हो। यह व्यंग्य है।

ऊधौ, कर्मन की गति न्यारी।

सब नदियाँ जल भरि-भरि रहियाँ सागर केहि बिध खारी ॥

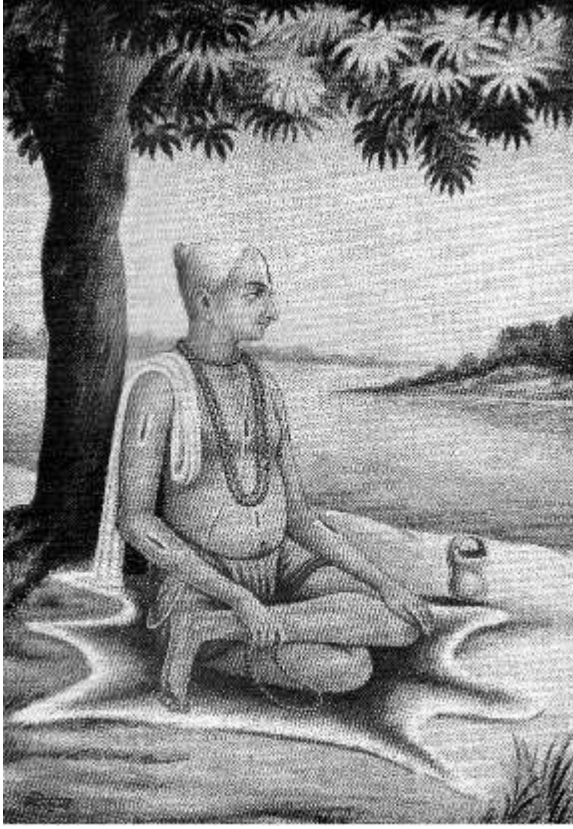
उज्ज्वल पंख दिये बगुला को कोयल केहि गुन कारी ॥

सुन्दर नयन मृगा को दीन्हे बन-बन फिरत उजारी ॥

मूरख-मूरख राजे कीन्हे पंडित फिरत भिखारी ॥

सूर श्याम मिलने की आसा छिन-छिन बीतत भारी ॥

भावार्थ : गोपियाँ भगवान कृष्ण के प्रति अपने प्रेम के प्रतिदानस्वरूप विरह को प्राप्त करती हैं। लेकिन वे इसे विधि का विधान कहकर आश्रित रहती हैं। वे ऊधो से कहती हैं कि हे ऊधो, प्रकृति का नियम एकदम उलटा है। धरती पर जितनी भी नदियाँ हैं वे सब की सब अपना मीठा जल सागर में डाल रही हैं लेकिन वह फिर भी खारा ही है। छद्म-तपस्वी बगुले को उसने सफेद रंग दिया है जबकि मीठा बोलने वाली कोयल को काला बना दिया। सुन्दर नेत्रों वाला हिरन जंगल में मारा-मारा फिरता है। अनपढ़ लोग धन से खेलते हैं जबकि ज्ञानी लोग अपना जीवन भीख माँगकर पूरा करते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा.. इसी तरह श्याम से मिलने की हमारी इच्छा जितनी



बढ़ती जाती है, उतना ही यह वियोग हमें भारी प्रतीत होता है।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएं

सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति, कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग आदि से श्रेष्ठ है।

सूर ने वात्सल्य, शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

मैया कबहिं बढैगी चौटी ?

किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।

जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।

सूर ने भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

सूर ने विनय के पद भी रचे हैं जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।

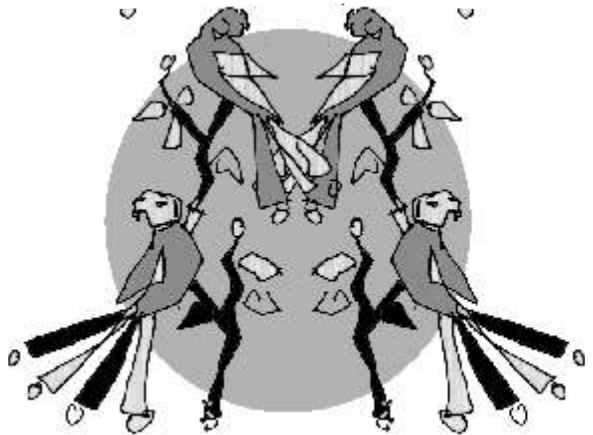
प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है।

सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छोटें भी मिलते हैं।

सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है। सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है। सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यंजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।

सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा गवैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

“सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है। उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।”





हरेराम समीप

सूर-साहित्य की प्रासंगिकता

म

हात्मा सूरदास हिन्दी वाङ्मय के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, भक्त कवि हैं, कालजयी कवि हैं। काव्याभिव्यक्ति में हिन्दी में उनके जैसा दूसरा कवि नहीं है, उन्हें कृष्ण भक्तिधारा के उद्भव और प्रवर्तन का श्रेय भी जाता है।

वास्तव में अपने काव्य से उन्होंने भक्तिधारा की दिशा ही बदलकर रख दी, उन्होंने पहली बार भक्ति को ईश-वन्दन से लीला-वर्णन में तब्दील कर दिया और तब से ईश-भक्ति कृष्ण के प्रेम-रंग में रंगने लगी। उत्तर भारतीय समाज में यह 'लीला वर्णन' एक अद्भुत क्रान्तिकारी परिवर्तन के रूप आया। पिछले पांच सौ साल में यह परिवर्तन एक सुदृढ़ परम्परा के रूप में विश्व व्यापी होता रहा लेकिन स्वयं इस क्रान्तिकारी कवि की छवि नहीं बदली और लगभग वही की वही रही—एक ऐसे भक्त कवि की जो—कृष्ण की बाल-लीला' के गान में मग्न रहता था और जो नेत्रहीन होते हुए भी ब्रजधाम में प्रतिदिन नए पदों के गायन से भक्तों को कृष्ण-लीला का दिव्य साक्षात्कार कराता रहता था।

या फिर यह मान कर चला गया कि उसने आजीवन गोकुल तथा वृन्दावन में रहकर लगभग सवा लाख पदों की रचना की जिन्हें आज भी मंदिरों में गाया जाता है।

या फिर यह कह दिया गया कि इन सवा लाख पदों में से लगभग 8000 पद उनके उस मूल ग्रंथ 'सूरसागर' में संकलित हुए हैं, जो एक 'लीला प्रबन्ध' है और जिसमें उन्होंने बाल कृष्णकाव्य को अपना मुख्य विषय बनाया है। कहा यह भी है कि यह 'सूरसागर' ग. थ. श. पी. म. द. भा. ग. व. त. के द. श. म. स. क. न्ध. के आधार पर रचा गया है, जो एक स्वतंत्र काव्य है। इसमें

भ्रमरगीत सबसे मर्मस्पर्शी अंश है, जहाँ कविता और शास्त्र का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

या यह कि भ्रमरगीत में सगुण और निर्गुण का अदभुत विमर्श प्रस्तुत किया गया है। भ्रमरगीत में निर्गुण पर सगुण, शुष्कता पर सरसता और दर्शन पर प्रेम ने विजय पायी है। भ्रमरगीत में 'सूर' की उ. त्कृष्ट व. अपटुता और 'लीला' की वृद्धता का जो परिचय मिलता है, वह उनकी जीवन-दृष्टि, उनके सूक्ष्म धर्म-ज्ञान व विराट दर्शन से आलोचित हुआ है। बड़े-बड़े अध्येता अपने पांडित्य से उनकी कलात्मक प्रतिभा पर यूँ अचरज भी व्यक्त कर देते हैं कि बाल-लीला वह भी ठेठ अभिधा शैली में गजब के हैं ये सूरदास जी आदि.... आदि..... और बात ले-दे के समाप्त हो जाती है....

कभी कभार यह भी बता दिया जाता है कि सूरसागर के अतिरिक्त दो संग्रह 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' में भी उनकी रचनाएं संग्रहीत हैं। 'सूर सारावली' में होली के दृश्यों के माध्यम से जीवन के सृजन के पद हैं। साहित्य लहरी में परब्रह्म को समर्पित गीत तथा काव्यांगों को लेकर काव्य शृंगारिक पंक्तियां संग्रहीत की गई हैं।

मित्रो! मुझे विश्वास है कि आपने हिंदी के इस महाकवि को स्कूल में ही सही लेकिन जरूर पढ़ा होगा। नहीं पढ़ा तो गूगल से पूछ कर अब आपका काम चल जाएगा। लेकिन मित्रो गूगल आपको यह नहीं बता पायेगा कि सूरदास के पद तो कब के आपकी आत्मा में, आपके संस्कारों में आपके बचपन से ही रचे-बसे हैं। हुआ बस यही है कि हम उन्हें भूलते जा रहे हैं। यदि हम अपने भीतर झाँककर देखें तो सूरकाव्य का वैराट्य हमारे सामने पुनः खुलने लगेगा।

सूर-साहित्य के वैराट्य का मूल तत्व हैं- प्रेम और भक्ति। यह प्रेम और भक्ति का चित्रण इतना हृदयस्पर्शी और भावपूर्ण है कि इसे सुनते या पढ़ते हुए यह मन में जीवंत होने लगता है। उनके पदों में जो लयात्मकता है, जो संगीतात्मकता है वह हमारी स्मृति में स्थायी रूप से जगह बना लेती है। सबसे बड़ा सौभाग्य और गौरव की बात है कि सूरदास के पदों की भाषा हमारी ब्रज भाषा है, जो हमारे क्षेत्र की जनभाषा है। यही कारण रहा कि सूरकाव्य ने सहज ही लोककाव्य का रूप लिया और इसलिए भी कि इन पदों में ग्राम्य- जीवन और प्रकृति के सुंदर सजीव चित्र मिलते हैं, जिनमें 'गो' तत्व अर्थात् गौ संस्कृति अत्यंत मुखर होकर चित्रित हुई है, तब ब्रजवासी उनकी ओर क्यों न खिंचे चले आए होंगे। कहा जाता है कि एक बार तानसेन और बादशाह अकबर भी सूरदास जी को सुनकर मुग्ध हो गए थे।

माना जाता है कि जब सूरदास जी की उम्र 18 वर्ष की हो गई तो वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के संपर्क में आए थे। यह भी कि इस उम्र तक आते आते वे अपने आसपास हो रहे सामाजिक अन्याय, सामाजिक विघटन और सांस्कृतिक उथल पुथल से गहरे स्तर पर बावस्ता हो चुके थे। वे इन त्रासद स्थितियों को व्यक्त करने और इन्हें बदलने के लिए बेचैन रहते थे। उनकी इस मनःस्थिति के पर्याप्त प्रमाण उनकी विनय व दास भाव वाली प्रारम्भिक रचनाओं में मिल जाते हैं। उनके मन पर ब्रज की सामाजिक सांस्कृतिक रंग का गहरा प्रभाव पड़ा था। अर्थात् सूरदास जी ने जो समाज पाया था उसमें विषमताएं और विसंगतियां कदम-दर-कदम भारी पड़ी थीं। ऊंच-नीच, वर्णव्यवस्था की विकृति से उपजे निम्न वर्ण में बढ़ती हीन भावना, दलितों व स्त्रियों पर होते अनगिनत अत्याचार, यातना, शोषण व दमन तथा अंधविश्वास व धार्मिक पाखण्ड के जाल में फंसी जनता खुद को हताश और असुरक्षित महसूस कर रही थी। मायावाद से समाज में लोकविमुखता और निष्क्रिय भाव पनपने लगा था। वर्तमान जीवन की विसंगतियों को लेकर उनका यह पद बहुत लोकप्रिय है-

ऊधो कर्मन की गति न्यारी

सब नदियां जल भरि भरि रहियां सागर केहि बिध खारी

**उज्जवल पंख दिये बगुला को कोयल केहि गुनकारी
सुन्दर नयन मृगा को दीन्हे बन बन फिरत उजारी
मूरख मूरख राजे कीन्हे पंडित फिरत भिखारी
सूर स्याम मिलने की आसा छिन छिन बीतत भारी**

ऐसे में सूरदास ने कृष्ण-लीलावर्णन से ब्रजधाम में समानता और आशा का संदेश दिया और जनता में नवजीवन का संचार किया। तभी तो उनके काव्य में गोप, गोपी व गोपाल सब एक समान हैं, न कोई छोटा है न कोई बड़ा।

'भक्ति आंदोलन' जब दक्षिण से आकर उत्तर भारत में उभरा तो इसने यहाँ धीरे-धीरे जन-सांस्कृतिक-चेतना का रूप ले लिया, जिसने समाज में हो रहे अधःपतन को रोक कर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पुराण सम्मत कृष्ण चरित के आधार पर अनेक सम्प्रदाय खड़े हुए थे, जिनमें सबसे प्रभावशाली पुष्टिमार्ग ही रहा, जिसके प्रमुख कवि सूरदास जी थे। हमारे देश पर इस्लाम के बढ़ते प्रभाव और हिन्दू समाज में बलात धर्मांतरण को देखकर विद्वानों में लम्बे समय से ऐसे आन्दोलन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिन्दुओं की लोककथाओं के आधार पर ईश्वर के प्रेममय रूप का व्यापक प्रचार प्रारम्भ किया था। इसी के समन्वित रूप में कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों ने कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग की चेतना जगाई। कृष्ण के बालरूप की जैसी मोहक, सजीव और बहुविध कल्पना सूरदास ने की है, उसका कोई सानी नहीं है। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छन्द प्रेम प्रसंगों द्वारा सूरदास ने मानवीय राग का बढ़ा निष्कल व सहज रूप प्रस्तुत किया है। यह प्रेम सहज परिवेश में सहयोगी भाव वृत्तियों से संपृक्त होकर यहाँ विशेष अर्थवान हो गया है। कृष्ण से कवि का संबन्ध साख्य-भाव का है। इस काल के साहित्य में धार्मिकता से अधिक मानवीय भाव की अभिव्यक्ति मिलती है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत बाल-लीलाएँ वास्तव में माँ यशोदा के हृदय की सम्पूर्ण झांकी प्रस्तुत करती है। सूरदास वात्सल्य रस के तो सम्राट माने जाते हैं। सचमुच वात्सल्य वर्णन का इतना श्रेष्ठ कवि संसार में दूसरा नहीं दिखाई देता। इसी वात्सल्य का एक अदभुत चित्र देखें -

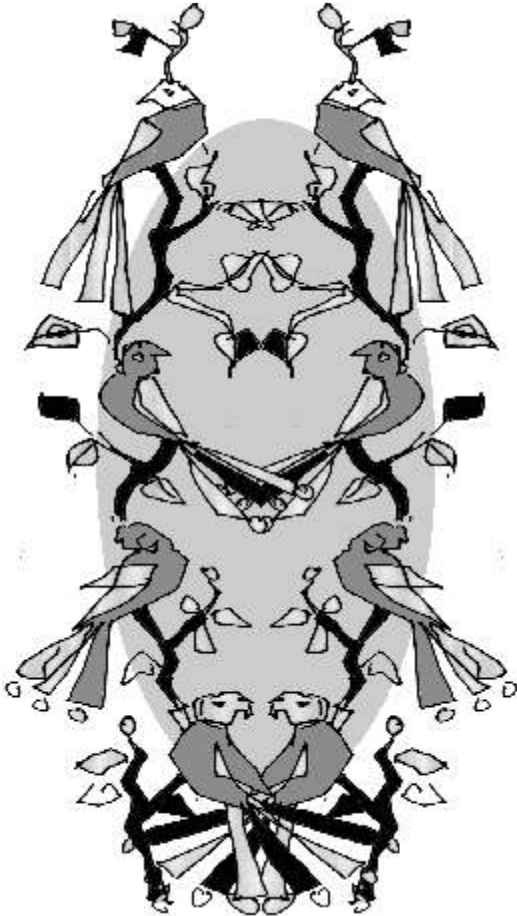
जसोदा हरि पालने जुलावे



हलरावै, दुलरावे, मल्हावै जोई सोई कछु गावै
मेरे लाल कौं आऊ निंदरिया काहे न आनि सुवावै
काहे नहिं बेगहि आवै तो कौं कान्ह बुलावै
कबहुं पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुं अधर फरकावै
सोवत जान मौन हुई कै रहि करि करि सेन बतावै
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै
जो सुख सूर अमरमुनि दुरलब सो नंद-भामिनि पावै

उनका प्रत्येक पद बताता है कि सूर मूलतः भक्ति चेतना के कवि हैं। वे भक्त पहले हैं, दार्शनिक बाद में हैं तथा समाज सुधारक या कुछ और उसके बाद में.... इसलिए उन्होंने दार्शनिकता व समाज सुधार का प्रतिपादन भी अपने भाव-भीने रसात्मक काव्य के माध्यम से ही किया है।

यह बात यहाँ उल्लेखनीय है कि सूरसाहित्य में अपने देशकाल और आसपास के बहुत संकेत मिलते हैं। वे दैनिक जीवन के इन्हीं संकेतों से लोकसंस्कृति का चित्रण करते हैं। अनेक प्रसंगों में ब्रज के लोक-संस्कारों का वर्णन मिलता है, जैसे- जन्मोत्सव, नामकरण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार,



यज्ञोपवीत, विवाह आदि में लोक परम्पराओं का बरीकी से वर्णन किया गया है। यहाँ जो लोकमंगल की भावना है, वह ब्रज के उत्सवों व त्यौहारों में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। चूँकि ब्रज अधिकांशतः गौ-पालन बहुल क्षेत्र है उन दिनों यहाँ गो, गोप, गोपी और गोपाल रहते थे। उनके भोजन थे- दूध, दही, मक्खन मिश्री कलेवा का बेहद आकर्षक वर्णन मिलता है। अतः कह सकते हैं कि सूरदास जी लोक-संस्कृति के भी कुशल चितरे हैं। 'सूरसागर' के पाठ से मैंने पाया है कि उन्होंने अपने काव्य में लोकसंस्कृति के चित्रण में भावात्मकता को प्रधानता दी है।

मेरा मानना है कि सूरदास जी को अपने काव्यसृजन के दो ही प्रयोजन मिले थे- एक कृष्ण भाव का जनसामान्यीकरण, जिसे जनता का स्वीकार्य मिला और दूसरा त्रस्त आदमी के भीतर बैठे भय, हताशा, यातना और बेबसी से लड़ने के लिए एक अलौकिक मानाया कलात्मक आश्वासन, सहायता। वह हैं उम्मीद मिली। कृष्ण से उनके साख्यभाव का यह प्रचलित पद देखिए-

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो

समदरसी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो

एक लोहा पूजा में राखत एक रहत ब्याध घर परो

पारस गुण अवगुण नहिं चितवन कंचन करत खरो

एक नदिया एक नाल कहावत मैलो ही नीर भरो

जब दौ मिलकर एक बरन भई सुसरी नाम परो

एक जीव एक ब्रह्म कहावै सूर श्याम झगरो

अब की बेर मोहि पार उतारो नहिं पन जात टरो

इसके लिए उन्होंने शास्त्रों और रूढ़ियों के वर्चस्व को भी पूरी तरह नकार दिया। और नगरीय लीला या महलों के भीतर के वैभव का वर्णन करने से भी उन्होंने गुरेज किया। इसकी बजाय उन्होंने ग्रामांचल को चुना, नदी तट चुना, चारागाह चुना या कुंज गलियाँ चुनीं, ये सभी लोक जीवन की कर्मस्थलियाँ हैं।

मेरा यह अब कहने का आशय यही है कि कवि सूरदास कोई एकान्त साधक तो थे नहीं कि केवल ईश भजन या साधना में रमे रहते, बल्कि उन्हें तो अपने आसपास के अपने लोगों, अपने समाज के हित की इच्छा रहती थी। प्रतिदिन पदों का गायन उनके समाज चिन्तन और लोकमंगल की भावना से ही जुड़ा था। वे जनता के बीच प्रतिदिन नए पद लिखकर लोकचेतना को विकसित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी करते जाते थे। आप पाएंगे कि अपने समय की विडम्बनाएँ इन पदों में बार-बार प्रतिध्वनित होती हैं। इस सत रहत नकीक विताभी लोकचेतना को ही समर्पित थी। ब्रज उनकी कविता का क्षेत्र

रहा। यही उनका गो लोक है, जहाँ कृष्ण उसके राजा हैं और राधा उनकी रानी हैं और वृंदावन उनके गोलोक की राजधानी है। वे जानते हैं कि यह ब्रज क्षेत्र हर तरह की दीनता, हीनता, शोषण, उत्पीड़न, दमन आदि से उत्पन्न कुण्ठाओं या हीनग्रंथियों से मुक्त है, क्योंकि इसके राजा कृष्ण हैं। इसीलिये वे उन्हें कभी ब्रजनाथ, कभी गुसाईं, कभी भक्तवत्सल, कभी गोकुलपति आदि संबोधनों से पुकारते हैं। उनके राज्य की जनता के प्रतीक वास्तव में गोप व गोपियां ही हैं।

सूरदास को नारियों का सबसे बड़ा हितैषी कवि माना जा सकता है। सूरदास के लिए नारी काम या वासना का प्रतीक कभी नहीं बल्कि कोमलता, प्रेम, सृजन और संवेदना की मूर्ति के रूप में व्यक्त हुई है। नारियों पर हो रहे अत्याचार और भेदभाव को समाप्त करने के लिए सूरसाहित्य से आज के कवियों को प्रेरणा लेना चाहिए। सच तो यह है कि तत्कालीन शासन व्यवस्था में नारियों की बहुत दुर्दशा थी, जिसके प्रतिकार में और मुस्लिम शासन के बढ़ते वर्चस्व के सामने 'भक्ति आंदोलन' के माध्यम से एक नयी वैकल्पिक लोकधर्मी समाज व्यवस्था की यह अवधारणा सूरदास की ही देन है।

सूरकाव्य की प्रासंगिकता या अर्थवत्ता इस बात पर निर्भर होती है कि वह जीवन से कितनी सम्बद्ध है। यह माना जाता है कि जीवन के प्रति व्यापक दृष्टि से ही कोई रचना सर्वकालिक होती है। इस तरह के भक्ति आंदोलन के उद्भव के जो सामाजिक और सांस्कृतिक कारण रहे वह सभी सूर के काव्य के अभीष्ट बने और चूंकि वे सभी सामाजिक सांस्कृतिक कारण हैं बल्कि आज जो पूंजीवाद और उपभोक्तावाद के साथ घृणा, हिंसा और आतंकवाद भी बढ़ रहा है, तब सूरकाव्य न केवल हमारा संबल है बल्कि अत्यंत प्रासंगिक भी है। भारतीय साहित्य में सूरदास एक ऐसे दिव्यदृष्ट हैं, जो भारतीय संस्कृति और परम्परा को व्यापकता से प्रभावित करते हैं। वे एक साथ एक कवि, एक दार्शनिक, एक संत और एक संगीतज्ञ के रूप में हमारे सामने आते हैं। इतिहास साक्षी है कि ब्रजभाषा को परिष्कृत कर उसे पूरे क्षेत्र की प्रमुख साहित्यिक भाषा बनाने का कार्य सूरदास ने ही किया था।

समकालीन परिदृश्य में जब हमारी सोच और संवेदना में आमूलचूल बदलाव आ गए हैं तब हमें सूरकाव्य को समझने के लिए उसके अध्ययन की परम्परागत पद्धति को भी बदलना होगा। वास्तव में सूर-साहित्य ने धर्म व साहित्य का एक अदभुत सामंजस्य प्रस्तुत किया है। आश्चर्य है कि इसमें कहीं कट्टरता या सांप्रदायिक अतिवाद का अंश नहीं मिलता है। सूर की कविता ने औपचारिक पूजा अर्थात् कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए मंदिरों में पूजा-अर्चना को सीधे भक्त और भगवान

की लीला वर्णन से जोड़ा था और इस तरह सूरदास जी 'भक्ति' को किसानों, मजदूरों, चरवाहों अहीरों और ग्राम्यजीवन के हर तबके से जोड़ देते हैं।

यही वजह थी कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सूरकाव्य को 'भक्ति का सागर' और सूरदास को 'साहित्य के आकाश का सूर्य' कहा था। यह उनकी महानता का सटीक प्रतीक भी है। वे अष्टछाप के प्रथम भक्त कवि थे। इसी तरह उनके निधन के समय गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने सूरदास जी के बारे में कहा- "देखो 'पुष्टिमार्ग का जहाज' डूब रहा है, कोई बचा सके तो बचाए।" यह सच है कि सूर काव्य से हिन्दी साहित्य को शिखर गौरव मिला है। गुरु ग्रन्थ साहब में भी उनके अनेक पद समाहित हैं। यहां उन्हें 'भगत सूरदास' कहा गया है।

अर्थात् सूर-साहित्य आज भी जीवन के सत्य, जीवन के संरक्षण और जीवन के विकास की ओर उन्मुख कालजयी काव्य है, जो किसी युग की सीमाओं में सिमटकर समाप्त नहीं हो सकता। वह तब भी प्रासंगिक था, अब भी प्रासंगिक है और सतत प्रासंगिक रहेगा। यह सड़ लेक्ट्रॉनिक और डिजिटल संस्कृति के समय में सूरकाव्य के मूल्यांकन के प्रति अध्येताओं के एक नए दृष्टिकोण की आवश्यकता अवश्य है। इस साहित्य को डिजिटलाइज होकर जन जन को उपलब्ध होना चाहिए। यह हमारी जवाबदारी भी है और जिम्मेदारी भी है कि हम 'भक्तिकाल' के उस सृजन को प्रकाशित करें जिसे हमारे महान भक्त कवियों ने संघर्ष और साधना से अर्जित किया है।

यह भी विचारणीय है कि आज के परिपेक्ष्य में उनके व्यक्तित्व व कृतित्व का सम्यक मूल्यांकन नहीं हो पाया है। उम्मीद है कि इस ओर अकादमी की पहल होगी और हरियाणा के किसी विश्वविद्यालय में 'सूरदास पीठ' या 'सूर अध्ययन संस्थान' की स्थापना हो ताकि सूरदास तथा अन्य महाकवियों के अमर काव्य पर सतत अध्ययन, मूल्यांकन और अध्यापन संभव सके।

सम्पर्क : 395 सेक्टर 8, फरीदाबाद-121006
मोबाइल : 9871691313





शहर-शहर स्थायी स्तम्भ

फरीदाबाद : शेख फ़रीद से सूरदास तक

कें

द्वीय राजधानी नई दिल्ली से सिर्फ 21 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हरियाणा का यह महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र अपने अंचल में वर्तमान की आधुनिकता और अतीत की परम्पराओं को एक साथ समेटे

हुए है। लगभग 2500 पंजीकृत फैक्टरियों वाले इस शहर की पहचान 'हेवल्स इंडिया', 'जेसीबी', 'इंडियन आयल', 'एल एंड टी', 'वर्ल्डपूल', 'बाटा इंडिया', 'आयशर ट्रेक्टर', 'गुड इयर इंडिया' और 'एबीबी ग्रुप' जैसी कम्पनियों से भी है।

फ़रीदाबाद की एक विशिष्ट पहचान संत कवि सूरदास की जन्मस्थली के रूप में भी है। लगभग 500 वर्ष पूर्व भक्तिकाल के इस महान संत कवि ने इसी शहर के 'सीहीग्राम' (अब सेक्टर-8) में जन्म लिया था।

शहर को वर्तमान नाम वर्ष 1607 में सूफ़ी संत शेख फ़रीद के नाम से मिला। यह शेख फ़रीद भी बाबा फ़रीद कहलाते थे। बाबा उन दिनों मुगल सम्राट जहांगीर का कोष भी सम्भालते थे। शहर की स्थापना का उद्देश्य 'जीटी रोड' को संरक्षित रखना था। बाद में फ़रीदाबाद को एक परगना बना दिया गया और इसका शासन बल्लबगढ़ के शासक ने सम्भाल लिया। यहां यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि यह शेख फ़रीद, अजोधन (पाकपट्टन) वाले बाबा फ़रीद से भिन्न थे। मुगलों के बाद

18वीं शताब्दी में यहां का शासन अंग्रेजों के हाथ आया। भारत-पाक विभाजन के समय पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को बसाने के लिए भी इसे प्रमुख पुनर्वास केंद्रों में शामिल किया गया। इन शरणार्थियों में सभी धर्मों के लोग शामिल थे। हिन्दू भी थे, सिख भी, ईसाई भी और कुछ उदारपंथी मुस्लिम भी। इसी का असर यहां की लोक संस्कृति पर भी पड़ा।

राजनैतिक रूप से भी यह शहर सदा सक्रिय बना रहा है। प्रथम आम चुनाव में देश के शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने यहीं से लोकसभा का चुनाव जीता था। फ़रीदाबाद से जुड़े अन्य चर्चित क्षेत्रों में बड़खल झील, अनंगपुर डैम, सूरजकुण्ड आदि भी शामिल हैं।

बड़खल

दिल्ली-सीमा से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह झील पर्यटकों के लिए एक विशिष्ट आकर्षण है। लगभग 40 एकड़ में फैली यह झील अरावली पर्वत शृंखला की गोद में स्थित है। यह मानव निर्मित झील पहले सूख गई थी मगर अब इसे फिर से भरा गया है और हज़ारों पर्यटकों को इसका पर्यावरण खींच लाता है।

सूरजकुंड

इसी फ़रीदाबाद का एक भाग है हरियाणा का प्रमुख पर्यटन केंद्र 'सूरजकुंड'। अब 'सूरजकुंड अंतर्राष्ट्रीय हस्तशिल्प

मेला' स्थल इसकी विशिष्ट पहचान बन गया है। गत वर्ष इस मेले को देखने आने वालों की संख्या 12 लाख का आंकड़ा पार कर गई थी।

अरावली पर्वत शृंखला की पृष्ठभूमि के आगे स्थित सूरजकुंड का जलाशय 10वीं शताब्दी से जुड़ा है। 10वीं शताब्दी से इसे तोमरवंश के गुर्जर राजा सूरजपाल ने बनवाया था। वस्तुतः तोमर, सूर्य-भक्त था। इसी आस्था के चलते इस 'सूर्य-कुंड' जो आज सूरजकुंड के नाम से प्रचलित है, का निर्माण हुआ था। ऐसा ही एक 'सूरजकुंड' पंजाब के शहर सुनाम में था। इसे महमूद गज़नवी ने तोड़-फोड़ डाला था। अब भी वहां सूर्य मंदिर के भग्नावशेष मौजूद हैं।

दिल्ली से सूरजकुंड तक 43 प्राचीन स्थलों में हुई खुदाई ने यह तथ्य प्रमाणित किया है कि इस क्षेत्र का संबंध पाषाण-युग में भी रहा है। पुरातत्वविदों की मान्यता है कि प्रागैतिहासिक काल में यहां का पर्यावरण पाषाण युग की मानव सभ्यता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना गया था।

तोमर वंश के शासक पहले अरावली पर्वत शृंखला में बसे हुए थे। सूरजकुंड में आने के बाद उन्होंने सूर्यकुंड के निर्माण के साथ ही लालकोट में अपना किला भी बनाया। बाद में इसी किले को किला-राय पिथौरा कहा जाने लगा। फ़िरोज़शाह तुगलक के शासन में यहां प्राचीन सूर्य मंदिर के समीप ही एक गढ़ी का भी निर्माण हुआ। यही गढ़ी सरोवर के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। कुछ इतिहासज्ञ यह भी दावा करते हैं कि इस सरोवर ने वर्ष 686 ईस्वी में कराया था।

तोमर वंश तुगलक वंश सब अतीत के गर्त में चले गए मगर सूरजकुंड आज भी मौजूद है। यहां पर्यटक भी आते हैं और आस्थावान श्रद्धालु भी।

नाहर सिंह महल

इन दिनों पर्यटन विभाग द्वारा नियंत्रित व संचालित यह महल अब कार्तिक-सांस्कृतिक महोत्सव के लिए चर्चित रहता है। जिला फरीदाबाद के बल्लभगढ़ क्षेत्र में स्थित इस महल का निर्माण वस्तुतः बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह के पूर्वजों ने वर्ष 1739 में एक किले के रूप में कराया था। किले के चारों कोनों पर चार मीनारें थी, मगर अब दो ध्वस्त हो चुकी हैं। महल में एक दरबारे-आम है और एक रंगमहल है, जो एक भव्य छतरी से सज्जित है।

राजा नाहर सिंह के पूर्वज तेवतिया गोत्र के जाट थे और उन्होंने ही वर्तमान महल का एक किले के रूप में वर्ष 1739 के आसपास निर्माण कराया था। बल्लभगढ़ की यह छोटी सी पूर्व

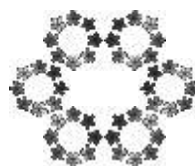
रियासत दिल्ली से लगभग 33 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। राजा नाहर सिंह को आज भी प्रथम स्वाधीनता संग्राम में उसकी जुझारू भूमिका के लिए श्रद्धा से याद किया जाता है। उसका जन्म 6 अप्रैल, 1821 को राजा राम सिंह के यहां हुआ था। वह जब नौ वर्ष के ही थे तो राजा राम सिंह का निधन हो गया। लालन-पालन चाचा नवल सिंह ने किया।

किवदंती यह भी प्रचलित है कि राणा नाहर सिंह गुरु गोरक्षनाथ के आशीर्वाद से जन्मे थे। वर्ष 1839 में राजा नाहर सिंह का राज्याभिषेक हुआ था। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के मध्य जिला कलक्टर विलियम फोर्ड ने राजा से भी 'विद्रोहियों' को कुचलने के लिए मदद मांगी मगर राजा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। इसके विपरीत राजा के आदेश से विद्रोहियों के लिए किले के द्वार भी खोल दिए गए। उस समय के राजदरबार के एक मुंशी जीवनलाल द्वारा लिखित विवरण के अनुसार राजा नाहर सिंह ने उन दो सौ सैनिकों को अपने राज्य की सेना में नौकरी प्रदान की जो पहले अंग्रेजी-सेना का अंग थे। इस आशय का आदेश राजा नाहर सिंह ने 17 जुलाई, 1857 को जारी किया था। यह संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। राजा नाहर सिंह ने राजकोष जुटाने के लिए कुछ नए कर भी लगाए। नए संसाधनों से सेना के लिए अत्याधुनिक शस्त्रास्त्र खरीदे गए। सेना के लिए बड़ी संख्या में घोड़े व हाथी भी खरीदे गए।

प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के उन्हीं दिनों में राजा नाहर सिंह ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह और दिल्ली-सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र के नेतृत्व में अंग्रेजी सेनाओं से जूझने की भी सार्वजनिक घोषणाएं कीं। फतेहपुर और पलवल के परगना से राजा नाहर सिंह की सेनाओं ने ही अंग्रेजों को खदेड़ा था। इसके अतिरिक्त दिल्ली से होडल तक के राष्ट्रीय राजमार्ग की पूर्ण सुरक्षा का दायित्व भी इसी जुझारू शख्स ने सम्भाला था।

राजा नाहर सिंह को चांदनी चौक में वर्ष 1857 में फ्रांसी दी गई थी। अपने अंतिम क्षण तक इस शासक ने विदेशी शासन के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा था। इस राजा का महल अब हरियाणा पर्यटन निगम द्वारा संचालित होटल में बदल गया है। लेकिन इस स्थल की ऐतिहासिकता व स्थापत्य को पूर्णतया मूल रूप में बनाए रखने के सभी प्रयास किए गए हैं।

-सम्पादन डेस्क





राजकिशन नैन



भूले बिसरे रंग

ज

ब से हम पेड़ों से रंग बनाना भूले हैं, तब से हमारे होली और हुरंगे जैसे रंगीले त्योहारों का सुहावन सोता असमय थम गया है। पश्चिम के अनवरत अन्धानुकरण के चलते हमारे सुरंगे पर्वों और प्राकृतिक रंगों की सांस्कृतिक परंपरा हमसे विलग हो गयी है। मधुमास की अनुवाई में वसंत की पुकार पर उमड़ने वाले देसज रंग अपनी चमकीली चमक समेत हमारी पहुँच से परे हो गये हैं। रंगों की फुहारों के साथ 'सत रंग खेलौं अपने पिया संग' सरीखे होली पर गाये जाने वाले ठेट गीत भी पीछे छूट गये। फाग के दिन राहगीरों को देसज रंगों से नहलाकर ठहाके लगाने वाले रंग-रंगीले हुड़दगिये भी अब गली-कूचों में कहीं नजर नहीं आते। होली के रंगों से माटी की मदीली महक और मनोहारी नूतनता कोसों दूर चली गयी। अलगोजा, तंबूरा, वंशी और थाली की मधुर ध्वनियों का सदाबहार तिलिस्म भी सदा के लिए खो गया है-

'झांझ, मंजीरा, ढोलक, डफली, नहीं दुतारी, चंग, मस्त झूमते पेड़ों के संग गये महकते रंग।'

धुलेडी के दिन देसी रंग उड़ाकर डफ बजाने वाले डफाली कृत्रिम रंगों के महासमुद्र में हिचकोले खा रहे हैं। देसज रंगों से सराबोर डफालचियों की मंडलियाँ सामान्य जनों की संगीत-चेतना को भीतर तक प्रभावित करती थीं। अब न वे रंग हैं, न वैसे डफाली हैं। आजकल के रासायनिक रंग गात पर पड़ते ही छाती में छौंक-सा लगता है और त्वचा में खुजली होने लगती

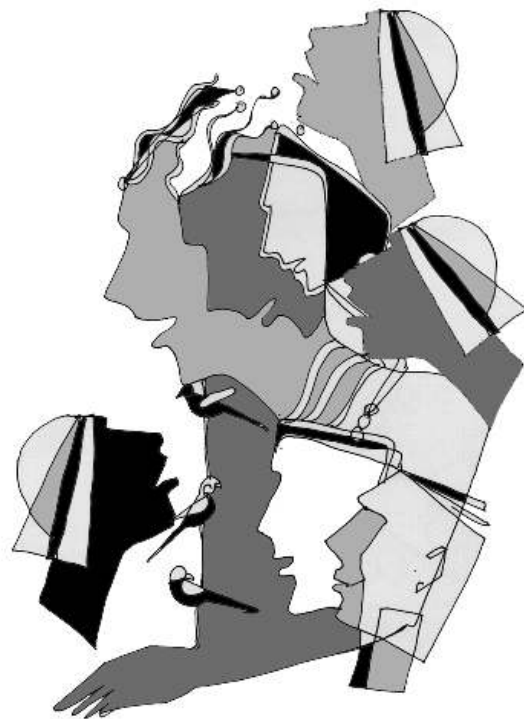
है। रासायनिक रंगों को देखकर न मन उमड़ता है, न पाँव थिरकते हैं। अब न अस्सी साल के फड़िया बाबू गले में ढोल डालकर 'फगुआ' गाते हैं, न साठ साल का पेटल पूरण पाँवों में घुँघरू बाँधता है, न बूच्चा रांडु भाँग खाकर भौजाई को केसरिया रंग के कड़ाहे में धकेलता है। ऐसे में टेसू के 'कसूमल' रंग के हौज और नील के नीले चहबच्चे अब कहाँ नसीब हों। 'लेहू गुलाल दुहू कर में पिचकारिन, रंग हिये महिमारौ' की साथ किस बिध पूरी हो। रासायनिक रंगों ने देसज रंगों का सारा सत निचोड़ लिया है। एक जमाना था जब हमारे देश में सर्वत्र देसज रंगों का बोलबाला था। अब से साठेक साल पूर्व तक देसी रंग हमारे जीवन से अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए थे। फागुन की फगनौटी बयार से पूर्व ही तब जन-मन पर देसज रंगों का खुमार चढ़ने लगता था। आज प्लास्टिक की अंगुल जितनी पिचकारियाँ हैं, तब दो-दो हाथ लंबे बाँस के पिचकारे थे। उस समय बाल्टियों का बरतेवा नहीं था। बड़े-बड़े हौज और कड़ाहों में पेड़ों से प्राप्त सुगंधित रंग घोले जाते थे। फाग खेलते समय केवड़ा, केसर, चंदन और अरगजा सरीखे सुगन्धित पदार्थों का अधिकाधिक इस्तेमाल होता था। धुलेडी के समय गुलाल, हलदी, दूध और दही को फेंटर बनाये गए रंग छिड़के जाते थे। उन दिनों ढाक के फूलों का रंग सबसे ज्यादा बरता जाता था। धरती और आकाश दोनों टेसू के रंग से नहा जाते थे और झरोखे-अटारी अबीर-गुलाल से अट जाते थे। तब, रंग-गुलाल लगाने और लगवाने दोनों में चित की उमंग तरंगित होती थी। हमारे बड़े होली के दिन देसी रंगों के



हौज में गोते मारते थे, जबकि हमें पानी से कंपकंपी छूटती है। बड़ों की बनिस्पत हम में ठंडा पानी सहन करने की ताकत नहीं रही है। बचपन में हम उधामी बच्चों की टोली के साथ अकसर बिना बताये घर से दौड़ जाते थे और पूरे शरीर पर रंगों की छाप लगवा कर हुलसते हुए वापस लौटा करते। कहाँ गया वह रंग-गुलाल? देसज पेड़ लगाने और उनसे रंग बनाने की कला हम भूलते जा रहे हैं। होली के मौके पर ढाक के फूलों को पानी में भिगोकर पीला रंग बनाना भी हमने छोड़ दिया है। ढाक की तरह कोई डेढ़ सौ पेड़-पौधे और हैं, जिनसे हमारे बड़े रंग बनाते आए हैं। कुछ पेड़ों के फूलों से रंग बनता है, जबकि बहुत से पौधों की जड़ तने और शाखाओं से रंग प्राप्त होता है। रंग भरे बीजों वाले भी कुछ पौधे देखने में आए हैं। स्वास्थ्यप्रद रंग और आसानी से रंग देने के कारण कुछेक पौधों ने खूब लोकप्रियता हासिल की है। इन पेड़-पौधों में पहला नाम पलास अथवा किंशुक का है, जिस हम छिबला और छीला कहकर पुकारते हैं। पलास हमें सदियों से पीला प्राकृतिक रंग सौगात के तौर पर देता आ रहा है। 'आक, ढाक, नीम, जौ, सौ' और 'ढाक के वही तीन पात' जैसी कहावतें हमने ढाक पुष्पों के अवदान के लिए ही गढ़ी हैं। एक सौ साल पूर्व तक हमारे देश में ढाक वनों की बहुलता थी। तब, रंगैया, लीलगर रंगसाज, रंजक और हुरियार पलास सहित तमाम रंग देने वाले वृक्षों के फूल, तना, पत्ते, बीज एवं छाल आदि की टोह में नित्य वनाटन करते थे। 'वन की ज्वाला' (फे लम ऑफ दी फारेस्ट) कहे जाने वाले ढाक में माँ शीतला का वास माना गया है। वृक्षों की श्रेणी में ढाक को अतीव पवित्र मानकर ब्रह्मचारी इसकी लकड़ी का दंड धारण करते आए हैं। ढाक के तीनों रूप-वृक्ष रूप, क्षुप रूप और लता रूप जटाचीर को प्रिय रहे हैं। चैत मास में ऊधमी वसंत ढाक पर सूरख अंगार जैसे टेसू खिलाकर आग लगाता है। तो सब तर लोक जगदानन्द की रचना पर विमोहित हो उठता है। पलास यानी ढाक की ललाम सौगात पाकर समूची प्रकृति उल्लास से

नर्तन करती है। ढाक के फूलों को पानी में भिगोने पर सुबह पक्का, चटख कसूमल रंग तैयार हो जाता है। रंग को अधिक चटक बनाने के लिए फूलों को भिगोते समय उनमें फिटकरी अथवा चूना मिला दिया जाता है। हमारे बड़े ढाक के ताजा फूलों से ललाम रंग निचोड़कर उसे पानी में घोल लेते थे। धन्य हैं वे लोग जिन्हें टेसू के ताजा रंगों से हुंरंगा खेलना पसंद रहा है। आज के कचभरड़े रंगों ने होली का सारा मजा किरकिरा कर दिया है। ढाक और उसके टेसू सदा के लिए गुम हो गए हैं। पीला रंग प्राप्त करने के और भी कई तरीके थे। हमारे गोचारक पीला रंग बनाने के लिए देई गाय को दो-तीन दिन तक चारे की जगह केवल आम के पत्ते खिलाते थे। इस रीति से गोमूत्र गाढ़ा पीला हो जाता था। उस जरद मूत्र को मिट्टी की कोरी हंडिया में डालकर उसमें थोड़ा केसर मिलाकर पीला रंग प्राप्त किया जाता था। यह बेशकीमती रंग अमावस्य को मात करता था। चमड़ी को स्वस्थ बसुंदर बनाने की इससे बड़ी औषध दूसरी न थी। पीला और हलदिया रंग बनाने के लिए हलदी का बरतेवा हमारे यहाँ पुराने समय से है। खाद्य वस्तु के रूप में हलदी का इस्तेमाल हमारे घरों में सदियों से है। दुनिया भर में हलदी की खेती का सबसे ज्यादा रकबा हमारे यहाँ है। हलदी के डेढ़-दो फुट ऊँचे पौधे अदरक के समान छोटे-छोटे किंतु कुछ बड़े पत्तों वाले होते हैं। इसके पत्तों को मसलकर सूँघने पर आम्र मंजरी सरीखी महक आती है। हलदी की गाँठों का रंग सुवर्ण के समान पीला होता है। सीलियेह मइ सेक ाचनीअ ारक ाचनके न ामसे पुकारते हैं। हमारे ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी हलदी से रंगे पीतवस्त्र प्राचीन काल से पहनते आ रहे हैं। पुराकाल में हमारे ऊनी, रेशमी और सूती कपड़े हलदी बरतते हैं। हलदी से बढ़िया किस्म का कुमकुम बनता है, जिसे हम पूजा-पाठ आदि में इस्तेमाल करते हैं। हलदी का तिलक माथे पर अलग ही फबता है। हमारा रंग उद्योग हलदी की बिसात पर टिका है। उबटन के अलावा हलदी के औषधीय उपयोग भी अनगिनत हैं। हरी ताजी हलदी की भाजी भी गुणकारी होती है। हमारे देश में चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी कोई ऐसा व्यक्ति न मिलेगा जिसने अपने जीवन में हलदी न खायी हो। हलदी का उड़नशील सुगंधित तेल हमारे भोज्यपदार्थों के रस वादु अरि रस वास्थ्यप्रदाब नाता है। हलदी का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह हर चीज को अपने रंग में रंगकर उसे पीला कर देती है। हलदिया रंग देह पर पड़ने से फोड़े-फुंसी और दाद-खुजली जैसे रोग स्वतः उड़न-छू हो जाते थे। फाग खेलते समय भाभी के हाथों से देह पर पड़े कोरड़ों की पीड़ा भी हलदी दूर करती आयी है। पीले रंग की महिमा और महता बखान से परे हैं। सूर्यदेव नित्य सुबह-शाम इस रंग की बखेर अपने पीत प्रकाश के रूप में करते हैं। सूरजमुखी के

पुष्पों को भी प्रकृति ने यही रंग बख्शा है। श्रीकृष्ण ने जब से पीताम्बर धारण किया था तभी से पीला रंग हमारे जीवन में मद घोल रहा है। होली के साथ पीले रंग का वही नाता है जो चन्द्रमाँ का चकोर से है। चकोर पक्षी चन्द्रमाँ को एकटक देखने की चाह में जलता हुआ अंगार निगल जाता है। गेंदा, सणी, सूरजमुखी, हलदवा और पसरमा गोभी के पौधे भी पीले रंग के स्थाई स्रोत रहे हैं। कंड़ाई के पीले फूलों से भी पीला रंग मिलता रहा है। पीला रंग चंकि सूर्य के प्रकाश का रंग है, सो यह हमारे शरीरमें ऊर्जा का रस चारक रता है। मारीब पौधिका मता बढ़ाकर हमें सूझ-बूझ का धनी बनाता है। चुस्ती और स्फूर्ति के लिए पीले रंग का विशेष महत्व रहा है इसीलिये होली पर हम गुलाबी और लाल रंग के साथ इसे चाव से बरतते हैं। गुलाबी रंग के लिए हम गुलाब के ऋणी हैं। गुलाब को गुल-आतिशी, गुल-फिरंग और गुल-आब की संज्ञा यूँ ही नहीं बख्शी गई है। गुलाब शब्द जुबान पर आते ही हमें शुभ और सौंदर्य का बोध होने लगता है। गुलाब के साथ हमारा संबंध हजारों साल से है। इत्र, गुलाबजल, अर्क, गुलकंद और गुलाब की टंडाई बनाने के लिए गुलाब की खेती हमारे यहाँ सदियों से की जाती है। गुलाब यदि फूलों का सम्राट है तो इसकी सुगन्ध तमाम सुगन्धों की साम्राज्ञी है। झाड़ी के आकार का देशी गुलाब सैकड़ों सालों से हमारे किसानों की रोजी-रोटी से जुड़ा है। इस देसज अथवा हिंदुस्तानी गुलाब की ऊँचाई दो से तीन फुट तक होती है। यह वर्ष भर फूल देकर अपने मालिक का उपकार करता है। समस्त संसार में गुलाब की कोई दस हजार से ऊपर किस्में हैं। किंतु इत्र बनाने के लिए सारे विश्व के लोग हमारे इसी भारतीय गुलाब पर निर्भर हैं। आयुर्वेद में औषध निर्माण हेतु भी यही गुलाब बरता जाता है। प्रदूषण को संतुलित करने में गुलाब का कोई सानी नहीं है। गुलाब की नजाकत और इसकी भीनी-भीनी महक अनायास ही हमें इसका दीवाना बना देती है। रियासती काल में तमाम शहजादियाँ गुलाब जल में नहाया करती थीं। गुलाब के इन्हीं गुणों पर रीझकर हमारे बडगरों ने होली के लिए गुलाबी रंग ईजाद किया था। चुकन्दर को पानी में रगड़कर भी हम गाढ़ा गुलाबी या रानी रंग हासिल करते रहे हैं। नांरगी रंग प्राप्त करने के लिए हमारे बडगर हरसिंगार के सोहन पुष्पों की डंडियों को सुखाकर घर में रख लेते थे तथा जरूरत पड़ने पर इन्हें रातभर पानी में भिगोकर खुशबूदार रंग बना लेते थे। आजकल जो अबीर अथवा गुलाल हम होली पर एक-दूसरे को मलते हैं वह घातक रसायनों द्वारा निर्मित बनावटी लाल रंग है। किंतु हमारे पुरखे गुलाल को पेड़ों से हासिल करते थे। वे, बक्कम (जिसे हम पतंग के नाम से भी जानते हैं) पेड़ की छाल लेकर बड़े जतन से चटक लाल गुलाल तैयार किया करते थे। आज बक्कम ढूँढ़ने पर



भी नहीं मिलता। प्राकृतिक लाल रंग के लिए हमारे रंगरेज मजीठ (मजिष्ठा) नामक लता की जड़ों का शोधन करते थे। मजीठ की जड़ों से लाल रंग बनाने की विद्या हमारे पूर्वजों ने सतयुग में हासिल कर ली थी। देश के प्राचीन खेड़ों और टीलों की खुदाइयों में सूती वस्त्रों के जो लालिमा युक्त टुकड़े पुराविदों को मिले हैं, जानकारों के अनुसार वे मजीठ की जड़ से रंगे हुए हैं। लाल स्याही के लिए भी मजीठ के डंठल बरते जाते थे। ऊनी कंबलों और कालीनों की रंगाई भी रंगैया, मजीठ से करते थे। मजिष्ठा की लकड़ी के चूरे को लाल अनार के छिलकों और लाल हिबिस्कस के सूखे हुए फूलों के साथ उबालकर भी बड़ेरू लाल रंग बनाते थे। मलयगिरी के लाल चंदन का चूरा भी लाल रंग की तान बजाता था। लाख के कीड़ों से भी लाल रंग बनाने की रीत रही है। लाख से प्राप्त महावर द्वारा सौभाग्यवती स्त्रियाँ पाँवों को चित्रित करती आयी हैं। महावर एक तरह का लाल रंग ही होता है। सिंदूरिया नामक फल के बीजों को पीसकर भी हम गुलाल और ललाई रंग बनाते रहे हैं। मेंहदी का चटक लाल रंग भी हमारी पहली पसंद है। मेंहदी के रंग के क्या कहने! मेंहदी का बरतेवा हमारे घरों में प्राचीन काल से है। यूँ तो मेंहदी हरियाणा के फरीदाबाद और गुजरात के सूरत जिले से प्राप्त होती है। महेंद्रगढ़ के जिला मुख्यालय नारनौल की मेंहदी भी बहुत मशहूर रही है। दिल्ली देहात और मालवा अंचल की मेंहदी भी हाथों-हाथ उठती रही है। मेंहदी के झाड़ीनुमा पौधे बाड़ की शक्ल में रोपे जाते हैं। संश्लेषित अर्थात् कृत्रिम रंगों के हमले से

पहले मेंहदी हमारे यहाँ लाल रंग का सबसे बड़ा जरिया थी। आज भी हमारे देश की मेंहदी सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। विदेशों में हमारी मेंहदी की सर्वाधिक मांग है। प्राचीन काल से हमारी सुहागिनें हथेलियों, तलवों, नाखूनों और बालों को रंगने के लिए मेंहदी उपयोग में ला रही हैं। तरुणाई की दहलीज पर खड़ी कोई भी बहू-बेटी मेंहदी के आकर्षण से अछूती नहीं रहती। नवेली दुल्हनों का शृंगार मेंहदी के बिना पूरा नहीं होता। ब्याह के मौके पर मेंहदी की रस्म हमारे यहाँ लाजिमी है। लोक धारणा है कि जिस व्यक्ति के माथे पर मेंहदी रच जाए, वह भाग्यवान होता है। मेंहदी के थापों की परंपरा हमारे यहाँ शाश्वत है। पहले पहल रेशम और ऊन की रंगाई के लिए भी मेंहदी बरती जाती थी। सिंगार के अलावा मेंहदी चमड़ा रंगने के काम आती है। मेंहदी आग से जले फफोलों को ठीक करती है। दुनिया में ऐसा कोई साबुन या शैंपू नहीं है, जो मेंहदी के परंपरागत रंग को हथेली से उतार दे। इसीलिये मेंहदी हमारे हृदय में बसी है। मेंहदी की पत्तियों के पाउडर से बेहतर हरा रंग दूसरा नहीं है। मेथी, पुदीना, पालक, धनिया और गेहूँ के पत्तों को पीसकर हम हरा रंग लेते रहे हैं। सरसों के पीले फूल भी हरा रंग देते हैं। गुलमोहर वृक्ष के पत्तों को सुखाकर एवं पीसकर हम हरा गुलाल बनाते आए हैं। देसज वनस्पति में हरे रंग के 'रुआसण' के पेड़ जैसे कुछ दुर्लभ स्रोत और भी हैं।

केसरिया रंग भी हमारे हीय में भीतर तक समाया हुआ है। केसरिया बाना पहनकर हमारे केहरियों ने सदियों तक रणक्षेत्र में खांडा बजाया है। केसरिया रंग, केसर के फूल के मध्य में स्थित महीन सींके अथवा रेशे से प्राप्त होता है। यह लाल रंग का सुगंधयुक्त पदार्थ देखने मात्र से मन का मैल दूर भाग जाता है। यँ तो हम पलास, रक्त चंदन और हरसिंगार के फूलों से भी केसरिया रंग लेते रहे हैं। लेकिन केसर से मिलने वाला बेशकीमती रंग सबसे सर्वोत्तम होता है। दुनिया के सबसे महंगे रंग का तमगा इसी के नाम है। केसर की सौगात विश्व को कश्मीर ने दी है। कश्मीर के काश्तकार पिछले पंद्रह सौ साल से उम्दा किस्म का केसर उगाते आ रहे हैं। केसर की खेती अतीव श्रमसाध्य होती है। भादों मास में केसर के कंदों को खेत में रोपा जाता है। कार्तिक के आरंभ में इसकी चटकीली कलियाँ

पल्लवित होने लगती हैं। पौष के जाड़े से पहले केसर के फूल चुन लिये जाते हैं। एक सेर सूखा केसर हासिल करने के लिए करीब डेढ़ से दो लाख फूलों की जरूरत पड़ती है। कालिदास ने संस्कृत काव्य में केसर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आचार्य चरक और सुश्रुत के अलावा संस्कृत साहित्य एवं निघण्टुग्रंथों ने केसर के औषधीय गुणों को मुक्त कंठ से सराहा है। उबटन के साथ-साथ पूजन सामग्री, विवाह संस्कार, राज्याभिषेक और तंत्र साधना हेतु केसर के उपयोग का विधान हमारे यहाँ पुरातन काल से है। केसर पाक, बादाम पाक, हलवा और खीर सरीखे

व्यंजनों को सुगंधित व रंजनीय बनाने के

लिए केसर का उपयोग अपरिहार्य है। शुद्ध केसर की थोड़ी-सी मात्रा सकोरे में पानी के साथ डालने पर केसर पानी में डूब जाता है। इसे हिलाने पर पानी का रंग केसरिया हो जाता है। शुद्ध केसर की पहचान यह है कि रंग छोड़ने के बाद भी उसके रेशों का रंग यथावत बना रहता है।

यानी रेशे सफे दी अथवा पीलक नहीं पकड़ते हैं। आजकल उत्तरकाशी और पिथौरागढ़ (उत्तरांचल) एवं सांगला घाटी (हिमाचल प्रदेश) में भी केसर उगाया जा रहा है। केसर की सबसे बड़ी खामी यह है कि यह शुरू से ही आम आदमी की पहुँच से दूर है। सामान्य अरैम ध्यवर्गीयल गेस'मलक' वृक्ष से केसरिया रंग प्राप्त करते हैं। सेमल के फूलों को रात भर पानी में भिगोने से सुंदर केसरिया रंग तैयार हो जाता है। ज्यादा गाढ़े और चमकदार रंग की खातिर सेमल के फूलों को उबालने की परंपरा है।

पुष्पतरुओं में सेमल और ढाक की ऊँचाई प्रायः एक समान होती है। किंतु जिस मुद्रा में बाँह पसारकर सेमल गगन को चूमने के लिए आतुर होता है, वह ढाक के बूते से बाहर है। वसंत के फूलों में सेमल सबसे पहले फूलता है। हल्की कपास का यह वजनदार पेड़ पक्षियों को दूर से लुभाता है—

'सेमल फूल्या चैत में, झड़-झड़ पड़ै कपास।

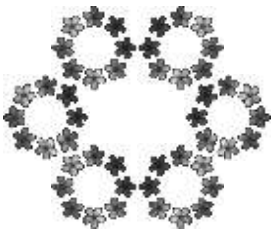
सुरख सूँही सुवना चला हिरदै जागी आस।।'

लेकिन सेमल पर आने वाले पक्षी फल की जगह रूई पाकर ठगे-से रह जाते हैं और सेमल को छलिया कहकर दुतकारते हैं। सेमल की नरम रूई तकिये और गद्दे भरने के काम



आती है। सेमल की लकड़ी दियासलाई, कागज और फलों की पेटियाँ बनाने में बरती जाती है। सेमल की आयु दो सौ वर्ष तक होती है। सेमल का वृक्ष ब्रह्मा को प्रिय है। महाभारतकार का कथन है कि सृष्टि रचने के बाद दादा ब्रह्मा ने सेमल के पेड़ तले विश्राम किया था। ऊँट और बकरी सेमल की पत्ती चाव से खाते हैं। सेमल का केसरिया रंग गात की तन्द्रा तोड़ता है। बाँझ गाय को सेमल की पत्तियाँ खिलाकर गो-पालक उसके मूत्र से रंग बनाया करते। वह रंग भित्तिचित्रों में बरता जाता था। नीले रंग के लिए नील का पौधा भी कुदरत ने हमें हजारों वर्ष पहले दिया था। किसी जमाने में नील की खेती हमारे यहाँ बड़े पैमाने पर होती थी। उन दिनों समस्त संसार में हमारे यहाँ बने नील की माँग थी। डेढ़ सदी पूर्व नीलहेल गेर्गोनेर कसानों से जेर-जबर्दस्ती करके नील की खेती से भारी मुनाफा कमाया। नील के पौधे के औषधीय गुणों को भी सर्वप्रथम हमारे आचार्यों ने परखा था। नील के पौधे का रस मिर्गी व अन्य मानसिक रोगों के लिए बहुत उपयोगी है। जकरंडे के फूलों से नीला रंग बनाने का काम भी हमारे यहाँ खूब रहा है। गँवई रंगरेज लीलबड़ी के पके फल से गाढ़ा नीला रंग बनाते थे। प्रकृति ने हमको रंग देने वाले पेड़ बहुतायत में दिये थे। लेकिन हमारी लापरवाही के कारण उनमें से ज्यादातर पेड़ लुप्त हो गये हैं। जो थोड़े-बहुत देसज वृक्ष बचे हैं, उन पर भी खत्म होने का खतरा मँडरा रहा है। पाँच प्रकार के पुष्प देने वाला पारिजात यानी पारस, पीपल भी इक्का-दुक्का जगह बचा है। शमी, कदंब, ढाक, सेमल, बरणा, जंगल जलेबी, कचनार, भोज, पिलखण, रोहिड़ा, अशोक, गूलर, बडबेर, लेहसवा, नीम, पीपल, वट, खिरनी एवं जाल जैसे वृक्ष भी तीव्रता से ओझल हो रहे हैं। रक्त कमल, नीलकमल व ब्रह्म कमल भी थोड़े-से बचे हैं। कैसी विडम्बना है कि जिन दरख्तों तले हम पल बढ़कर बड़े हुए, उन्हीं को हमने बिसरा दिया। रंगों के इस पर्व होली पर परंपरागत पेड़ लगाने की सौगंद उठाइये और रासायनिक रंगों से नाता तोड़कर अपने जीवन के सब्ज कैनवास में ठेठ खुशनुमा रंग भरिये। इसके बाद हर होली पर इस शपथ को दोहराये। प्रकृति उपकृत होगी।

सम्पर्क : गांव- अजायब, जिला- रोहतक (हरियाणा)
मोबाईल : 9813278899



लघुकथा

आशीर्वाद

मनोज शाह 'मानस'

मैं बहुत तेज तेज से रो रहा था, चिल्ला रहा था।

हाथ बढ़ाकर छूना चाहता था, उन्हें स्पर्श करना चाहता था।
बेहताशा रोता ही चला जा रहा था।

मेरे सामने अंधेरे में तीन साल पहले परलोक सिधार चुकी है मेरी मां सामने थी। उनके हाथों में थाली था, थाली में कुछ प्रसाद रखी हुई थी, और बांटने की कोशिश कर रही थी।

मां मेरे सामने मैं अपने दोनों आंखों से उन्हें निहारता ही रहा, देखता ही रहा, टुकुर टुकुर देख रहा था।

वह मुझे प्रसाद देने की कोशिश कर रही थी।

लेकिन मैं रो-रो कर चिल्ला चिल्ला कर कह रहा था,

“मां मुझे प्रसाद नहीं चाहिए, बस तुम फिर वापस आ जाओ ! मुझे कुछ भी नहीं चाहिए मुझे सिर्फ तुम चाहिए।”

मैं जानता था कि यह संभव नहीं है,

जो व्यक्ति इस लोक से उस लोक यानी परलोक सिधार चुकी हो, वह वापस नहीं आ सकते। फिर भी मेरा ज़िद था, मेरा हठ था।

तीन साल पहले परलोक जा चुकी मां पुनः मेरे आंखों के सामने विराजमान थी।

तो मैं भला कैसे जाने देता मां को, दूर से ही अंधेरों में ही इशारा करके कह रही थी, “बेटा ! यह संभव नहीं है। मैं पुनः इस लोक में नहीं आ सकती। यह मृत्युलोक है। यहां जो एक बार पैदा हो जाए उसे मरना ही पड़ता है। मरने के बाद वह शरीर पुनः वापस नहीं आ सकता। हां इतना जरूर है आत्मा वही होगा परंतु शरीर बदला हुआ होगा। चोला बदला हुआ होगा। मैं तो बेटा तुम्हारे सलामती के लिए, सफल जीवन के लिए तुम्हें प्रसाद देने आई हूँ।”

मैंने कहा, “नहीं मैं मुझे प. सादच चाहिए, न जीवन चाहिए, न सफल चाहिए, मुझे तो बस तुम चाहिए !”

मुझे तो बस तुम चाहिए !!”

इतना कहकर मैं रोता ही चला गया। हाथ बढ़ाता ही रहा।

मेरी मां दूर से ही मुझे आशीर्वाद देकर मेरे आंखों से ओझल हो गई।

सम्पर्क : डी-27, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-110015

खाक-ए-वतन

● चक्रबस्त ब्रिज नारायण

एक खाक-ए-हिंद तेरी अजमत में क्या गुर्मा है
 दरिया-ए-फ़ैज़-ए-कुदरत तेरे लिए रवाँ है
 तेरे जर्बी से नूर-ए-हुस्न-ए-अज़ल अयाँ है
 अल्लाह-रे ज़ेब-ओ-ज़ीनत क्या औज-ए-इज़्ज़-ओ-शाँ है
 हर सुब्ह है ये ख़िदमत ख़ुशीद-ए-पुर-ज़िया की
 किरनों से गूँधता है चोटी हिमालिया की
 इस खाक-ए-दिल-नशीं से चश्मे हुए वो जारी
 चीन ओ अरब में जिन से होती थी आबियारी
 सारे जहाँ पे जब था वहशत का अब्र तारी
 चश्म-ओ-चराग़-ए-आलम थी सर-ज़मीं हमारी
 शम-ए-अदब न थी जब यूनाँ की अंजुमन में
 ताबाँ था महर-ए-दानिश इस वादी-ए-कुहन में
 'गौतम' ने आबरू दी इस माबद-ए-कुहन को
 'सरमद' ने इस ज़मीं पर सदक़े किया वतन को
 'अकबर' ने ज़ाम-ए-उल्फ़त बख़्शा इस अंजुमन को
 सीँचा लहू से अपने 'राणा' ने इस चमन को
 सब सूरबीर अपने इस खाक में निहाँ हैं
 टूटे हुए खंडर हैं या उन की हड्डियाँ हैं
 दीवार-ओ-दर से अब तक उन का असर अयाँ है
 अपनी रंगों में अब तक उन का लहू रवाँ है
 अब तक असर में डूबी नाकूस की फुगाँ है
 फ़िरदौस-ए-गोश अब तक कैफ़ियत-ए-अज़ाँ है
 कश्मीर से अयाँ है जन्नत का रंग अब तक
 शौकत से बहर रहा है दरिया-ए-गंग अब तक
 अगली सी ताज़गी है फूलों में और फलों में
 करते हैं रक्स अब तक ताऊस जंगलों में



ऐ मेरे प्यारे वतन.....

● प्रेम धवन

ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन
 तुझपे दिल कुरबान
 तू ही मेरी आरजू तू ही मेरी आबरू
 तू ही मेरी जान
 ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन
 तुझपे दिल कुरबान
 तेरे दामन से जो आए उन हवाओं को सलाम
 तेरे दामन से जो आए उन हवाओं को सलाम
 चूम लूँ मैं उस जुबाँ को जिसपे आए तेरा नाम
 सबसे प्यारी सुबह तेरी, सबसे रंगीं तेरी शाम
 तुझपे दिल कुरबान
 तू ही मेरी आरजू, तू ही मेरी आबरू
 तू ही मेरी जान
 माँ का दिल बन के कभी सीने से लग जाता है तू
 माँ का दिल बन के कभी सीने से लग जाता है तू
 और कभी नहीं सी बेटी बन के याद आता है तू
 जितना याद आता है मुझको उतना तड़पाता है तू
 तुझपे दिल कुरबान
 तू ही मेरी आरजू, तू ही मेरी आबरू
 तू ही मेरी जान
 छोड़ कर तेरी ज़मीं को दूर आ पहुंचे हैं हम
 छोड़ कर तेरी ज़मीं को दूर आ पहुंचे हैं हम
 फिर भी है ये ही तमन्ना तेरे ज़रों की क्रसम
 हम जहाँ पैदा हुए उस जगह ही निकले दम
 तुझपे दिल कुरबान
 तू ही मेरी आरजू, तू ही मेरी आबरू
 तू ही मेरी जान
 ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन
 तुझपे दिल कुरबान।

रोटी

डॉ. सुभाष रस्तोगी

रोटी-

गोल हो या चपटी

मोटी या पतली

फूली या पिचकी

बेसनी या रूमाली

आग में सिकने के बाद

उसका एक ही धर्म होता है

भूख मिटाना आदमी की

माँ कहा करती थी

माँ रोटी की-

तमाम किस्मों से

नफरत किया करती थी

रोटी रूमाली ही

या फिर तंदूर में सिकी हुई

एकदम कड़क

या फिर अमीर रोटी

खालिस घी से तर-ब-तर

रोटी सूखी टिक्कड़ हो

या फिर बासी कुबासी

रोटी का एक ही धर्म होता है

पेट की भूख मिटाना

गरीब की भूख तो मिट जाती है

सूखी टिक्कड़ रोटी से भी

ये तो धनियों के चोंचले हैं

खाए अघाए लोगों के

कि रोटी आए लक-दक

घी से तर-ब-तर

थाली में!

लेकिन माँ कहा करती थी

कि रोटी

वही अच्छी होती हैं

जिसका आटा गुंधता है

औरत की देह के पसीने में

और चूल्हें की सोंधी गंध में

जिसका सिका होता है

पोर-पारे

अब तो माँ रही नहीं

तो किस्सा कोताह यह कि-

इस रोटी के किस्से भी

फाख्ता हुए

लेकिन मैं किस्म-किस्म

रोटी में

ढूंढ़ता फिरता हूँ-

माँ के हाथों की गंध

दरअसल

माँ के हाथों की

चूल्हें की सोंधी आंच में/सिकी

रोटी ही

जिंदगी को-

मानीखेज बनाती है!

रोटी-

गोल हो या चपटी

मोटी हो या पतली

फूली या पिचकी हुई

बेसनी या रूमाली

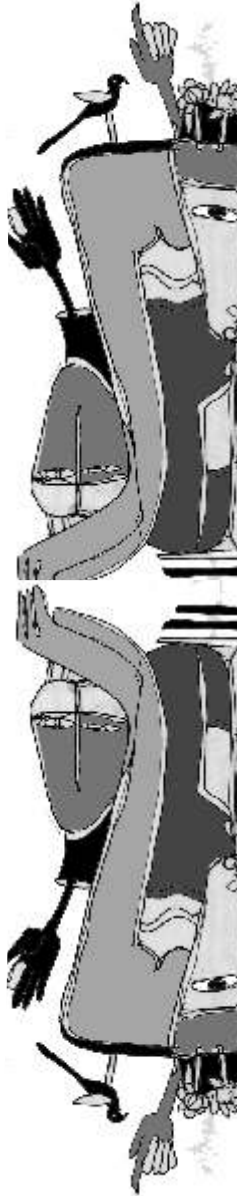
आग में सिकने के बाद

उसका एक ही धर्म होता है

भूख मिटाना आदमी की

माँ कहा करती थी।

सम्पर्क : 14-ए, डिवाइन अपार्टमेंट्स, विकास
नगर, वार्ड न. 12, बलटाना, जीरकपुर (पंजाब)



गज़ल

● कृष्ण गोपाल विद्यार्थी

मैं अपने आपको दर्पण से छुपाता तो फिर।
न खुद से भाग सका, बचता-बचाता तो फिर॥
खुली जो आंख तो पाया जमीं कहीं भी न थी।
मैं आसमान को कांधों पे उठाता तो फिर॥
बड़े कमाल का तैराक था मेरा दुश्मन।
मैं उसकी कश्ती के पतवार चुराता तो फिर॥
वो इत्मीनान से फूलों सा मुस्कुराता रहा।
मैं बदनसीब उसे जहर पिलाता तो फिर॥
मेरे होठों को सदा हंसने की दुआ देकर।
मेरी आंखों को एक शख्स रुलाता तो फिर॥

...

मेरी निगाह से दम भर ये आसमां देखो।
दिखाई देगा तुम्हें ज़ख्मी कहकशां देखो॥
कसो न फब्तियां मेरी उड़ान पर लोगो।
ज़रा ये वक्त के हाथों की कैचियां देखो॥
मशाल ले के सरेआम मत चले आना।
बहुत ही सहमी हुई हैं ये बस्तियां देखो॥
मिले थे तिनके ही क्या जोर आजमाईश को।
बिखर चला है हवाओ ये आशियां देखो॥
शहर के मलबे में बच्चों के खिलौने गुम हैं।
इन्हीं में होंगी कहीं गीली तख्तियां देखो॥

...

तपते सहरा में अगर कुछ कश्तियां रख जाएगा।
क्या समझता है कि तू भी नाखुदा कहलाएगा॥
तीरगी में भी उसे सब कुछ नज़र आता है साफ।
वक्तबूढ़ाह हीस ही, ह मसेन ध ठेखाख एगा॥
ख्वाब दिखलाते हुए वह रात लंबी कर गया।
हम इसी गफलत में थे कि वह सवेरा लाएगा॥
अशक जो पलकों पे ठहरा है मेरा हमराज़ है।
खाक में मिल जाएगा लेकिन न कुछ बतलाएगा॥
एक मुफलिस ज़िंदगी जीने की साज़िश कर रहा
ये खबर मुखबिर कोई दरबार तक पहुंचाएगा।

सम्पर्क : 3216, सेक्टर 9-ए, बहादुरगढ़-124507
मोबाईल : 8814938814

आज़ादी की महासदी

● डॉ. इन्द्रा रानी राव

सदी के तीन प्रहर
बचपन, यौवन और प्रौढ़
बचपन बीता आज़ादी की खुशी मनाने में
यौवन बीता आज़ादी की चकाचौंध में
प्रौढ़ावस्था बीती क्या खोया क्या पाने में
बुद्धि और अनुभवों ने सिखाया
अब अमृत बेला लायेंगे।

इस अमृतकाल में
कुछ करके दिखलाएंगे
विश्व में नाम कमाएंगे।

प्रधान मंत्री जी ने अमृतकाल में
देश हित में जो कल्पनाएँ की हैं
उन्हें पूरा करने में जुट जाएंगे
तभी तो आज़ादी की महासदी को
अमृतमयी बनायेंगे।

आज़ादी को अमरत्व दिलाएंगे
फिर से भारत को स्वर्णिम बनाएंगे
विश्व में अपना तिरंगा फहरायेंगे।

विश्व गुरु कहलाएंगे
हम आगे ही बढ़ते जाएंगे।

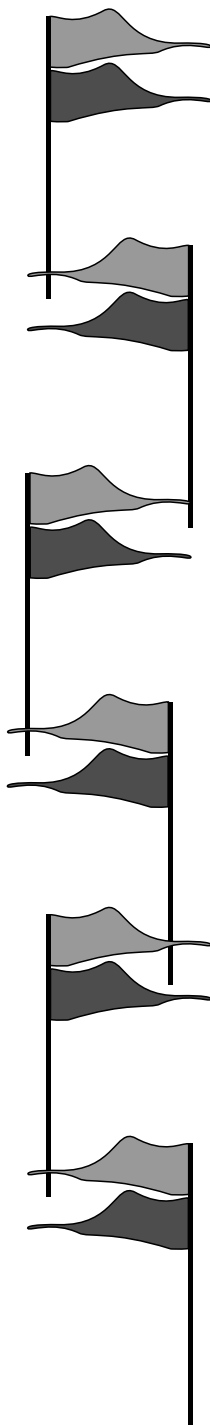
पुरातन संस्कृति को जीवन्त बनाएंगे
तभी तो भारत माता के सपूत कहलाएंगे
अन्धकार को त्याग प्रकाशोन्मुख हो जाएंगे
नीचता और अशिष्टता का कर तिरस्कार
प्रेम की ज्योति जगाएंगे
मस्तिष्क को ज्ञान ग्राही, हृदय को उदार
आत्मा को स्वतंत्र बना
आज़ादी का अमृत महोत्सव मनाएंगे।

सम्पर्क : 333, सेक्टर- 7, पंचकूला
मोबाईल : 9872100025

मेरा गांव बदल रहा है

● वन्दना यादव

मेरा गांव बदल रहा है।
गलियों में अब धूल नहीं उड़ती,
वहाँ बच्चे अब काठ की गाड़ी नहीं चलाते
वो बाँसुरी बजाते हुए जो खिलौने वाला आता था,
आठ आने में दो खिलौने और
मुट्ठी भर गोलियाँ दे जाता था
गोल अठन्नी का चलन जब से बंद हुआ है,
उसकी बाँसुरी भी बंद पड़ गई है।
भारी-भरकम पगड़ी वाला
सिर पर टोकरी लिए मैले-कुचैले कपड़ों वाली
लाड़ में डूबी, वो मुस्कान अब नहीं आती।
हाँ, अब गलियों में धूल नहीं उड़ती,
यहाँ सड़क जो बिछ गई है।
धीरे-धीरे मेरा गांव बदल रहा है।
चूल्हा सुलगाते ही झुर्रियों वाली देह
मोहल्ले के सारे बच्चों को,
कंडों पर सिंकी गुड़-शक्कर और
सौंफ वाली, नर्म रोटी परोसती थी
लाड़ और घी से, थाली लबालब रहा करती थी।
अब वो तजुर्बेवाले झुर्रीदार चेहरे
गली-मोहल्ले में बाँटने को, मीठी रोटी नहीं बनाते।
लकड़ी और कंडों से उठता धूँआँ, कहीं खो गया है
घर-घर में गैस का चूल्हा जो आ गया है।
धीरे-धीरे मेरा गांव बदल रहा है।
सबसे बड़े पेड़ की ऊँची डाली पर चढ़कर
तालाब में छलांग लगाया करते थे।
एक सिरे से दूसरे सिरे तक और
एक ओर से दूसरी ओर तक
साथियों संग पानी की गहराई नापते थे
अब उस तालाब में बच्चे, गहराई नहीं खोजते।
सब पक्के मकानों में खुश रहते हैं
हाँ वो कच्चे मकानों वाले घर याद बहुत आते हैं।
मेरा गांव बदल गया है
मेरा गांव बदल गया है।



सम्पर्क : 8800606550

कोई दूर खड़ा हो

● सुरेश कुमार कौशिक

कोई दूर खड़ा हो, सहसा ही,
मन ही मन बिम्ब बनाता है।
सांसो की जब जब ड्योढ़ी पर,
प्रणय का गीत उभरता है।
तब जीवन पथ में आ कोई,
नित अठखेली सी करता है।
कुछ बोल सके, ना तोल सके,
बस सोच सोच पछताता है।
कोई दूर खड़ा हो, सहसा ही,
मन ही मन बिम्ब बनाता है।
जीवन की इस पगडण्डी पर,
कभी आशा औ निराशा है।
कभी हास हताश हुआमानस,
कभी पनपे पुण्य जिज्ञासा है।
कुछ खोया सा कुछ पाया सा,
अदभुत सा खेल तमाशा है।
कभी पतझड़ पीढ़ा झेलता है,
कभी राग बसन्ती गाता है।
कोई दूर खड़ा हो, सहसा ही,
मन ही मन बिम्ब बनाता है।
प्रण प्राण जगत के प्रांगण में,
ले सपन हजारो चलते हैं।
कुछ भाव निगोरे बिरले ही,
जीवन साँचों में ढलते हैं।
सुख दुख है अनुभव, अनुभूति,
साजन रे राह बदलते हैं।
कोई, शंसय सार सृष्टि को,
सच शोध साध अपनाता है।
कोई दूर खड़ा हो, स हसा ही,
मन ही मन बिम्ब बनाता है।
कोई दूर खड़ा हो, सहसा ही।

सम्पर्क : 465, सेक्टर- 10, फरीदाबाद

यूक्रेन के पीड़ितों को समर्पित

राजकुमार निजात

मेरे बच्चे मेरे खून मेरे लख्ते जिगर
अब बिछोना तेरी खातिर
कहाँ से लाऊँ मैं
दूध की बूंद मयस्सर ही नहीं दूर तलक
रोशनी पूरे इस शहर से नदारद है
लाश ही लाश बिखरी हैं
जहाँ जहाँ देखूँ
लोग जीते हुए देखे थे जिन आँखों ने
उन्हीं आँखों ने मरते हुए उन्हें देखा है
जो परिंदे आकाश में उड़ते थे यहाँ
वो परिंदे दरखूतों पे चुप से बैठे हैं
एक चुप्पी है सन्नाटा है यहाँ दूर तलक
जिन घरों में कभी द्विंदगी हँसती गाती थी
अब वो घर खंडहर बन गए हैं सभी
कहीं भी रोते हुए बच्चे की आवाज नहीं
कहीं भी हँसते हुए बच्चों का कोई शोर नहीं
मेरी रूह के टुकड़े कुछ तो बोल जरा
न तू हँसता है न रोता है न बात करता है
मेरे होठों पर जो प्यार के उजाले थे
अब वो न जाने मिट गए कहीं दुबक गए
कांच का बदन है आँखें हैं खौफ खाए हुए
हर तरफ बिखरे हैं
बारूद के छिलके कितने
तूने माँगे थे मुझसे
टैंक के खिलौने कभी
और माँगे थे बंदूक के खिलौने कभी
देख कितने ही खिलौने बिखरे हैं यहाँ
वो जो बिखरा है
हवाई जहाज का अस्थि पिंजर
वही तो तेरे इस शहर का खलनायक है
यह मेरी बदनसीबी है
या कहर की इनायत है
तुझको अब लेकर मैं
जाऊँ भी तो जाऊँ कहीं
चाँद भी डर के दूर दुबक गया है कहीं

और सूरज है कि बस आग ही बरसाता है
बस्तियां झुलस गई हैं बारूद के धमाकों से
आग की लपटे दिन-रात उठी रहती हैं
शहर का पानी सूख गया है तमाम
अब तो बस मौत ही मौत है
जाऊँ तो मैं जाऊँ कहीं
बदन मेरा सूख गया है भूख के मारे
और धंस गई हैं आँखें अपनी आँखों में
अब तू आजाद है मेरे बच्चे
हूबहू मेरी तरह
मुझको बारूद का तहखाना अब बुलाएगा
एक दिन तू भी यहाँ रोना सीख जाएगा
यहाँ हँसने की पाबंदी हैं आकाओं की
छोड़ दे हाथ मेरा दूर कहीं जाने दे
ये तेरा वतन है तू अब अपने वतन को संभाल
ऐ मेरे लड़ते जिगर मेरे खून
मेरी बर्बादी के गवाह

सम्पर्क : 57, गली नंबर 1, हरि विष्णु कॉलोनी, कंगनपुर रोड
सिरसा-125055 (हरि.) मोबाईल : 9416729760



गुरु तेग बहादर-तुम हिंद की चादर

पृथ्वीसिंह बैनीवाल बिश्नोई

करते सभी है जिनका सम्मान,
रखते सभी नित जिनका मान।
रखी जिसने थी हिन्द की शान,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

कराया जिससे त्याग का भान,
जगाया जिसने सबमें सम्मान।
दिखाया जिसने मोह का त्याग,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

गुरुओं का रखा जिसने है मान,
जिसने जगाया देश स्वाभिमान।
जिनकी तपस्या से महका देश,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

जिसके मुख पर था तेढ़ अपार,
सभी तरफ दुश्मन बैठे थे तैयार।
उसके गुरु-पिता की सीख ही थी,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

दिया था जिसने विद्या अर ज्ञान,
बना गया वह जो पालक महान।
सहृदय सदगुरु है त्याग बलिदान,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

बहुत गुण थे जिनमे विद्यमान,
होता था भारत में अत्याचार।
दुष्ट पापी मचाई थी हाहाकार,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

बढ़ता जाता था तब ये दुराचार,
सृष्टि में निकट थी प्रलय साकार।
चिंता में डूबे जन पहुंचे गुरुधाम
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

ज्ञानवान और वे व्यवहार कुशल,
देख दशा संकट में ह्वे वे विकल।
ठानी स्वयं बलिदान की ऋषि ने,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

उनका लाल भी महान वीर था,
देख दशा धर्म की वो अधीर था।
कहै, राष्ट्र बढ़ा है देखो पिता श्री,
वह सदगुरु जी तेग बहादुर थे॥

विधर्मी को गढ़ में ही चुनौती देकर
वार दिया शीश गुरु धर्म रक्षा कर।
लाएज गृतिज नव ीरस भीम ते, ^{ने}
वो बलिदानी गुरु तेग बहादुर थे॥

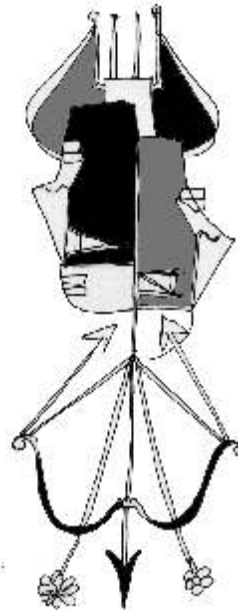
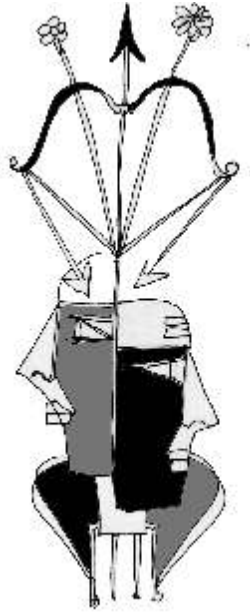
करती दुनिया जिनका आदर है
कहै जिन्हें सब हिंद की चादर हैं।
सदगुरु हम तुम्हें शीश झुका रहे,
क्योंकि तुम्हींव ते गब हादुर हे॥

हो ना सके कहीं धर्म का अनादर,
करें याद हम सब गुरु को सादर।
अब तक है वही 'हिन्द की चादर',
'पृथ्वीसिंह' वे गुरु तेग बहादुर है॥

सम्पर्क : हाउस नं. 313/14 (श्री ओ३म विष्णु निवास)

हिसार 125001 (हरियाणा)

मोबाईल : 9518139200



शहीद की माँ

सूरत सिंह 'आर्य'

सखि! मुझे सांत्वना दो, रुलाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

धैर्य दिलाने कि आई रुलाने?

सुत कि अमरता पै, आँसू बहाने!

मेरा वज्र-सा हृदय पिंघलाने,

कि आई हो श्रद्धांजलि चढ़ाने?

वीर-माता को सिंहनी बनाने,

या सृगाली की पदवी दिलाने?

कह दो, सखि!

कह दो, लज्जाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

अपने ही करों से-सुवन को बुलाकर,

संगर की सज्जा का तिलक चढ़ाकर;

निज पयोधरों का दुग्ध पिलाकर;

भेजा था उसको मृत्यु से जिलाकर;

'रणचंडी को वरना' ऐसे समझाकर;

'करना या मरना' यह पाठ पढ़ाकर-

नत-शीर्ष पुत्र ने कहा,

'माँ घबराती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

चला मुस्काता, स्नेह टपकाता;

स्मृति का अमिट दिया जलाता;

अग्नि ज्वाला-चिंगारी फैलाता;

भारत माँ की जय-जय सुनाता;

अशोक-चक्र-ध्वजा फहराता;

दिग्दिगन्तों में हलचल मचाता

स्निग्ध-कोमल चित्रण

हृदय से हटाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

समरांगण में जिसने तांडव दिखाया,

नग-सा अटल रहा लोहा बजाया;

तड़ित ज्यों कड़का अरि को थर्राया;

जिसने अरि की अग्नि को बुझाया;

बढ़ गया आगे ना पीछे को आया;

आँसू क्यों? सखि! गाओ बधावा

नाचो, गाओ, बजाओ, सकुचाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

हंस-हंस कर लाल मेरा लड़ा यों;

असुरदल से देवेन्द्र भिड़ा ज्यों;

ओज आनन लख विपक्षी चिड़ा क्यों?

क्षमा-याचना करें अरि गिड़गिड़ा यों;

तेज-तप्त-रवि-आस सा चढ़ा यों;

हंसो-हंसो सखि! म्लान मुखड़ा क्यों?

षटरस व्यंजन खाओ, आँसू बहाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

समरांगण रज लो आज ही आई;

लाल रंग की (शोणित-सिंजाई)

माथे लगाओ मैंने है मंगवाई;

खिलें तन-मन आँखें लुभाई;

लो, करो दर्शन-देखो जुन्हाई;

मेरे लाल की यह फोटो है आई

फूल बरसाओ सखि!

छाती दहलाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

मरा नहीं सुत अमर हुआ है,

सुरपुर-राजसिंहासन छुआ है;

अरि! इतनी अधीर! क्या हुआ है?

देशभक्त पुत्र बना अगुआ है;

वे भी धन्य-धन्य अहा! अहा!! हैं;

जो कि चाची, ताई अथवा बूवा हैं

सपूती हुई हूँ, तुम चिल्लाती क्यों हो?

मैं शहीद की माँ हूँ, भुलाती क्यों हो?

वरदान को अभिशाप न बनाओ,

पुण्य मिला है यों पाप न बनाओ;

सुकृति को यों कुकृति न जताओ;

आशा पै निराशा की छाया न लाओ;



हम धन्य हुई हैं सर्वेश गुण गाओ;
वर मांगो सखि! सुपुत्र सब पाओ
मरें देश-हित, ऐसे सुत न चाहती क्यों हो ?
मैं शहीद की मां हूँ, भुलाती क्यों हो ?

गर्व से मेरी छाती है फूली,
सुवन मरण का हूँ दुख भूली;
अपराधी नहीं था, आई न सूली;
अपकीर्ति की भी उड़ी न धूलि;
मैं इसी मस्ती में आज हूँ झूली;
क्योंकि उसने अमर-पताका छूली;
पुत्र-सुयश-गंग बहती,
न गोते लगाती क्यों हो ?
मैं शहीद की मां हूँ, भुलाती क्यों हो ?

जीना वही जो जीते हैं हंस कर,
मरना वही जो मरते हैं हंस कर;
लड़ना वही जो लड़ते हैं हंस कर;
प्राणों की बाजी ला चलते हैं हंस कर;
वह बसना ही क्या न बसते जो हंस कर ?
वह हंसना ही क्या न हंसते जो हंस कर ?
हंसो, सखि, हंसो !
मुझे न हंसाती क्यों हो ?
मैं शहीद की मां हूँ, भुलाती क्यों हो ?

हंसो, इतनी हंसो, सर्वत्र हंसी फैल जाए,
हमारी हंसी से शत्रु की छाती दहल जाए;
दिशायेँ हंसें नभमंडल में छा जाए;
दिव्यंगत पुत्रात्मा हंसे, नाचे और गाए;
'मातृशक्ति की जय' हंसी से टकराए;
दोनों की भिड़त से वज्र बन जाए
हंसो, सखि! अरि!
हंसकर न शत्रु रुलाती क्यों हो ?
मैं शहीद की मां हूँ, भुलाती क्यों हो ?

सखि! मुझे सांत्वना दो,
रुलाती क्यों हो ?
मैं शहीद की मां हूँ,
भुलाती क्यों हो ?

सम्पर्क : गांव व डाक- गोरीपुर, जिला- भिवानी (हरियाणा)

गीत

● राजपाल यादव

मतलाग़् रमँ लिखकरदूँ तो शेर बना क्या पाओगे।
शेर अगर मैं लिख डालूँ क्या ढाल बहर में पाओगे।।

रदीफ़ काफ़िया के संगम से गजल मुकम्मल होती है।
शब्द बहर में ढलते हैं तो अदभुत हलचल होती है।
शब्दों के सुर ताल मिले तो सधी तरनुम पाओगे।
मतला ग़् रमँ लिखकर दूँ तो शेर बना क्या पाओगे।।

शब्दों में प्रतिबिंब सजें तब चार चाँद लग जाते हैं।
बिम्ब प्रतिबिम्ब देख श्रोता झूम स्वयं ही गाते हैं।
इन सब तत्त्वों के मिश्रण से क्या अशआर बनाओगे।
मतला ग़् रमँ लिखकर दूँ तो शेर बना क्या पाओगे।।

ग़ज़लों के शायर को दुनिया सुनने को बेताब यहाँ।
शेर लबों पर आते ही करने लगती आदाब यहाँ।
मिलें यदि अशआर तो क्या तुम मकता फिर रच पाओगे।
मतला ग़् रमँ लिखकर दूँ तो शेर बना क्या पाओगे।।

मतलाम कताश रेरब हरहोज़ नग जलकही होतीहैं।
बहर नहीं तो लगता जैसे बिना सीप के मोती हैं
इनको सीखे बिन क्या शायर कभी यहाँ बन पाओगे।
मतला ग़् रमँ लिखकर दूँ तो शेर बना क्या पाओगे।।

कुछ मुक्तक

कविता का ही हूँ मैं साधक, उसका रहा पुजारी हूँ।
कविता पर ही कलम चलाता, कविता पर ही वारी हूँ।
कविता मेरी शब्द साधना, कविता ही दौलत मेरी,
कविता का ही जीवन भर मैं, रहा ऋणी आभारी हूँ।

शब्द कवि के अस्त्र शस्त्र हैं शब्द कवि की वाणी हैं।
शब्द शारदे माँ के वंदन शब्द ही वीणा पाणि हैं।
शब्दों में बने हैं विअ धूरे शब्द लेखनीधर सखे-
शब्द कवि की स्वर साधना शब्द ही भोजन पानी हैं।

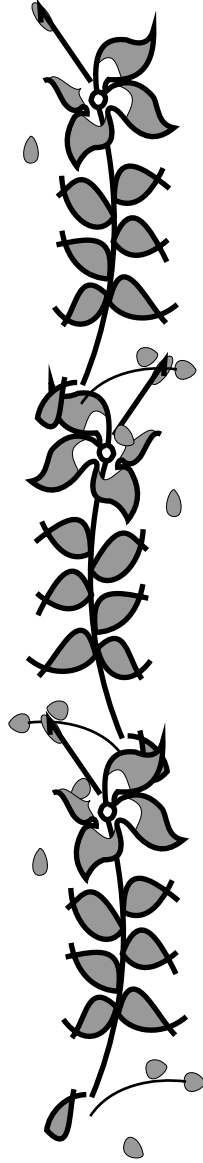
संघर्षों से नाता जोड़ो, अधियारों पर वार करो।
चीर समंदर की लहरों को, बाधाओं को पार करो।
बिना परिश्रम और लगन के, मंजिल हाथ नहीं लगती-
नेक इरादों के बल पर ही, सपनों को साकार करो।

सम्पर्क : प्रलैट नं. सी-92 स्पेज प्रिव्वी सेक्टर 93
हयातपुर रोड, गुरुग्राम-122505; मो. : 9717531426

तुलसी माँ

प्रदीप शर्मा

अचानक ही मेरे मन में
एक ख्याल आया
मैंने एक छोटा सा
पौधा तुलसी माँ का लगाया
जब भी मैं तुलसी माँ को
हरा-भरा देखता
तो मन मेरा खुशी से
प्रफुल्लित हो उठता
मैंने तुलसी माँ को
अपने मन में ऐसे बसाया
जैसे हनुमान जी ने
राम-सीता को
अपने हृदय में समाया
अचानक एक दिन
ऐसी विपत्ति मुझ पर आई
माँ तुलसी ने उस विपत्ति को
अपने ऊपर लेकर
मुझ अभागे की जान बचाई
हुआ ऐसा कि
एक दौर कोरोना का आया
हर जन था,
उसकी चपेट में आया
मैं भी न उससे बच पाया
डॉक्टर की दवा से न आराम पाया
किसी ने मुझे उपाय सुझाया
नित लो तुलसी के पत्ते का काढ़ा
नित पीने से तुलसी का काढ़ा
मैंने अपनी काया में सुधार पाया
ऐसा करते-करते मैंने एक दिन
तुलसी माँ को बिन पत्ते पाया
जब भी मैं अपने आप को
स्वस्थ पाता हूँ
नित अपनी तुलसी माँ के
ख्यालों में खोया पाता हूँ

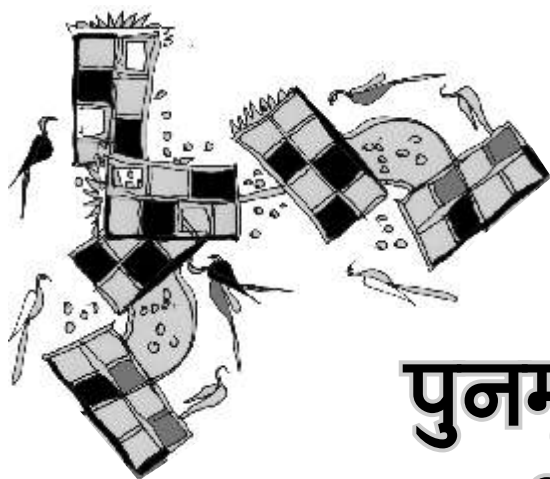


तुलसी माँ ने
मेरी सेवा का कर्ज चुकाया
मैं अभागा
अपनी तुलसी माँ को
सूखने से बचाने के लिए
कुछ न कर पाया
मैंने अपने
सभी दोस्तों को
था बताया
कि माँ तुलसी की
महिमा है अपरम्पार
करो तुलसी माँ की सेवा
तभी होगा बेड़ा पार
अचानक ही मेरे मन में
एक ख्याल आया
मैंने एक छोटा सा
पौधा तुलसी माँ का लगाया !

सम्पर्क : 442, गांव अभयपुर, पंचकूला- 134113

मोबाइल: 8528423826





डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल'



पुनर्मूल्यांकन आलोचना का निष्कर्ष है : डॉ. मंगल

प्रस्तुति : मुकेश लता

हिं

दी और हरियाणवी साहित्य के संकलन, विश्लेषण, मूल्यांकन और निष्कर्षण के विशेषज्ञ तथा समीक्षक, सम्पादक और शोध-निर्देशक डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल' का जन्म 15 मार्च, 1946 ई. को हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले के गाँव लुक्खी में हुआ। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से हिन्दी-विषय में बी.ए. (ऑनर्स), एम.ए. (स्वर्ण पदक सहित) तथा 'अस्तित्ववाद और नयी कहानी' पर पीएच.डी. की उपाधियाँ अर्जित करने के उपरान्त, लगभग 40 वर्षों तक, हिन्दी-प्राध्यापक, शोधक, समीक्षक और शोध-निर्देशक की भूमिकाओं का सफलतापूर्वक निर्वाह करते हुए आप कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र में हिन्दी-विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष-पद से सेवानिवृत्त हुए। डॉ. 'मंगल' प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, हरियाणा सरकार के 'विशिष्ट हिन्दी-सेवी सम्मान', 'महाकवि सूरदास सम्मान' और 'पंडित माधवप्रसाद मिश्र सम्मान' सहित, अनेकानेक सम्मानों से सम्मानित हो चुके हैं।

■ मुकेश लता : 'मंगल' जी प्रणाम। हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा आपको 'पं. माधवप्रसाद मिश्र सम्मान' (2019) प्रदान किये जाने पर हार्दिक बधाई। कृपया, उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, बताइये कि आपके साहित्यिक जीवन में आपकी पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का क्या

योगदान रहा ?

- डॉ. मंगल : बधाई के लिए धन्यवाद। मेरा जन्म, पालन-पोषण और प्राइमरी शिक्षा-दीक्षा, सब-कुछ, एक तत्कालीन अति-प्राचीन एवं पिछड़े गाँव से होते हुए थानेसर हर(कुरुक्षेत्र)त कस मायाहुआहै। व जमात की प्राइमरी पास करके, पाँचवीं से आठवीं तक, डी.बी. मिडल स्कूल, थानेसर और श्रीमद् भगवद्गीता हाई स्कूल, कुरुक्षेत्र से कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तक -- बस इतनी-सी दुनियाँ। न गाँव से शहर तक कोई रास्ता, न आवागमन के साधन। घोड़ा-घोड़ी, बैलगाड़ी और इक्का-दुक्का साइकिल -- सारा विद्यार्थी-जीवन इसी तरह कटा। हाँ ! इन परिस्थितियों पर हँसते-हँसते विजय प्राप्त करने का श्रेय मेरे माता-पिता को है। स्वयं तंगहाल रहकर भी उन्होंने मुझे कभी कोई कमी महसूस नहीं होने दी। प्राइमरी करते-करते उन्होंने मुझे महाजनी हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी में प्रवीण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे पिताश्री स्वयं उन भाषाओं के सुज्ञाता थे और 'राधेश्याम रामायण', 'महाभारत', 'किस्सा तोता-मैना', 'आल्हा-ऊदल' और 'किस्सा हातिमताई' आदि का नरन्तरग गान-पाठन किया करते थे। मुझे भी, बचपन में ही, इन रचनाओं का पढ़ने का सुअवसर

मिला। हिन्दी-भाषा के प्रति अनुराग का यह सुफ़ल निकला कि मैट्रिक तक आते-आते मैंने गणित (साँपनाथ) और विज्ञान (नागनाथ) से पीछा छुड़ा लिया तथा सदा-सर्वदा के लिए हिन्दी का होकर रह गया। जैसा-कैसा आपके सामने हूँ।

■ **हम आपके जीवन की किसी ऐसी अविस्मरणीय घटना के बारे में जानना चाहेंगे, जिसने आपके जीवन को नयी दिशा प्रदान की हो ?**

- मुकेश जी, ऐसा है कि जब 1959 में मैंने, प्रथम श्रेणी में, आठवीं की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और, छात्रवृत्ति के साथ, नौवी कक्षा में दाखिला लेने की योजना बनने लगी, तो पिता जी ने 'बहुत पढ़ लिया बेटा' कहकर आगे पढ़ाने से मना कर दिया और घर में, बड़ा बेटा होने के कारण, अपने सहयोगी के रूप में, दुकान के काम में लगा लिया। मैं इसे भगवत्कृपा ही मानता हूँ कि उस अवधि में हमारे यहाँ मेहमानों का आना-जाना कुछ-अधिक ही बढ़ गया था। हुक्का गुड़गुड़ाते हर-कोई मेरे पिता जी से पूछ ही लेता था कि 'छोरा क्या कर रहा है?' यह जानकर कि छोरे को दुकान पर बिठा लिया गया है, आगन्तुक की बिनमाँगी सलाह मिलनी शुरू हो जाती थी -- 'आजकल पढ़ाई का जमाना है, फेर छोरे ने अच्छे नम्बरों ते मिडलप एसकर ली है', 'इसना आगे जरूर पढ़ा' आदि-आदि। न- जाने ऐसी कितनी ही सलाहों को मेरे पिता जी ने अनसुना किया होगा, क्योंकि उनके सामने बोलने की किसी की भी हिम्मत नहीं होती थी। पता नहीं, एक दिन क्या 'आकाशवाणी' हुई कि मुझे आवाज़ लगायी और पास बिठाकर प्यार से पूछा कि 'आगे पढ़ने का मन है क्या?' मैंने हामी भर दी, तो वे गदगद हो गये। आव देखा न ताव, तैयार हुए और अपने साथ मुझे अपनी घोड़ी पर बिठाकर थानेसर (कुरुक्षेत्र) पहुँच गये। नवम्बर के अन्त में किसी स्कूल में दाखिला संभव ही नहीं था। जब शहर के कई प्रतिष्ठित लोगों ने स्कूल पहुँचकर मुख्याध्यापक महोदय से प्रार्थना



की, तब कहीं-जाकर मुझे नौवी में दाखिला मिला और, वार्षिक परीक्षा में, जैसे-तैसे मैं पास हो ही गया। यह प्रकरण मुझे जन्म-जन्मान्तर तक याद रहेगा। दिनेश भाई, जब कभी-भी उन दिनों को याद करता हूँ या घर-परिवार में यह प्रसंग सुनाता हूँ, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि वह 'आकाशवाणी' न हुई होती, तो आज, लालचन्द गुप्त 'मंगल', लाला लालचन्द बनकर, लुक्खी गाँव का ही आनन्द ले रहे होते।

■ **डॉ. साहब, हमें अपनी साहित्यिक यात्रा के बारे में कुछ जानकारी दीजिए।**

- मैं विशुद्ध गद्यवादी व्यक्ति रहा हूँ। गुरुजनों की असीम अनुकम्पा और छिटपुट स्वाध्याय के बल पर, छोटी-मोटी तुकबन्दी को छोड़कर, शोध और आलोचना ही मेरे कार्यक्षेत्र रहे हैं। सन् 1967 में एम.ए. की परीक्षा पास करते-करते मैं थोड़ा-बहुत लिखने-छपने लगा था। पचासाधिक वर्ष हो गये हैं कागज़ काले करते-करते। आज भी, लगभग प्रतिवर्ष, एक ग्रन्थ आ ही जाता है। ऊँची-से ऊँची कुर्सी का आनन्द लेते समय जो साहित्यिक ऊर्जा नष्ट कर दी थी, सेवानिवृत्ति (मार्च 2006) के पश्चात् साहित्य-साधना करते हुए उसकी भरपायी में जुटा हुआ हूँ। मेरे कतिपय बहुचर्चित शोधात्मक ग्रन्थ हैं -- अस्तित्ववाद और नयी कहानी (पीएच.डी.-शोधप्रबन्ध), आधुनिक युगबोध और साहित्य, हिन्दी साहित्य: वैचारिक पृष्ठभूमि, उत्तरशती के श्रेष्ठ हिन्दी कवि, चौथे स्तम्भ की चुनौतियाँ, कहानीमाला, हिन्दी बारहमासा-साहित्य, हरियाणा: प्रतिनिधि कहानियाँ, हरियाणा का लोक-साहित्य, हरियाणा का हिन्दी-साहित्य, हरियाणा के प्रमुख हिन्दी-साहित्यकार, सृजन के आयाम: रामनिवास 'मानव', पं. माधवप्रसाद मिश्र रचनावली (प्रकाशन-पूर्व पुनरीक्षण), अनुभूति के स्वर्णिम शिखर: लीलाधर 'वियोगी', गरीबदास, सत्तर सतरंगी साल: विधिश्री पवन चौधरी 'मनमौजी', मोहन चोपड़ा का रचनाकर्म, पद्यमाला, भक्तिकाव्य: प्रयोजन और प्रभाव, वर्तमान हरियाणा की प्रबन्ध-कविता,

निश्चलदास, हरियाणा का भक्तिकाव्य, हिन्दी कविता का इतिहास (2021), माधव कौशिक: सृजन की समीक्षा।

■ **हरियाणा के साहित्य पर शोध के क्षेत्र में आपका विशेष योगदान रहा है। कृपया अपने उस शोधकार्य से परिचित करवाइये।**

- अत्यंत विनम्रतापूर्वक बताना चाहूँगा कि मैंने और केवल-मैंने ही हरियाणा में रचित अज्ञात-अल्पज्ञात सृजनात्मक हिन्दी-साहित्य को, लेखन की मुख्यधारा में खड़ा करके, उसके शोध और मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त किया/कराया है। यह कार्य मैंने दो स्तरों पर सम्पन्न किया है। पहले स्तर पर, हरियाणा में रचित सृजनात्मक साहित्य के मूल्यांकन हेतु स्वयं लेखनी चलाई और दूसरे चरण पर, अपने शिष्यों-प्रशिष्यों को इस महत्वपूर्ण शोध-कार्य के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते हुए, उनका भरपूर मार्गदर्शन भी किया। मेरी प्रेरणा, प्रोत्साहन और मार्गदर्शन के फलस्वरूप, एम.फिल. और पीएच.डी. की उपाधियों हेतु, लगभग पाँच सौ शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये जा चुके हैं। विधानुसार शोध की प्रक्रिया लगभग पूर्ण हो चुकी है। आज हरियाणा के हिन्दी-साहित्य का शायद ही कोई पक्ष, विधा, लेखक या कृति हो, जिस पर शोध-कार्य न हुआ हो। हरियाणा का लेखक कहीं भी बैठा हो -- चाहे वह किसी सुदूरवर्ती गाँव में ही बैठकर साहित्य-साधना क्यों न कर रहा हो--उसे शोध की राह से, गुमनामी के अँधेरे से निकालकर, रोशनी के राजपथ का सहायत्री बनाने के प्रति अपनी प्रतिज्ञा को मैंने पूरा किया है। यही कारण है कि आज हरियाणा में रचित हिन्दी-साहित्य को एक राष्ट्रीय पहचान मिल चुकी है।

■ **आज आप अपने लेखन के उद्देश्यों की पूर्ति में स्वयं को कितना सफल मानते हैं ?**

- शत-प्रतिशत। मैं 1970 से 1978 तक मोदी कॉलेज, पटियाला में हिन्दी-प्राध्यापक रहा। यह वह ज़माना था, जब गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी-साहित्य की चर्चा ज़ोरों पर थी। मैंने पटियाला में अवस्थित 'स्टेट लायब्रेरी' और 'पंजाब भाषा-विभाग' की लायब्रेरी छान मारी तथा हरियाणा के प्राचीन साहित्य को ढूँढ़ निकाला। साहिबसिंह 'मृगेन्द्र' सम्बन्धी मेरी शोधात्मक कृतियाँ उसी ज़माने की खोज हैं। हरियाणा लौटकर मैं 1979 से तो इसी काम में जुटा हुआ हूँ और जुटा रहूँगा। हाँ ! चिन्ता होती है कि मेरे बाद क्या होगा ? आप मरे जग-प्रलय; जो हो, सो हो।

■ **आपके पसंदीदा साहित्यकार कौन हैं ?**

- वे सभी, जो 'लोकमंगल की साधनावस्था' में आस्था रखते हैं।

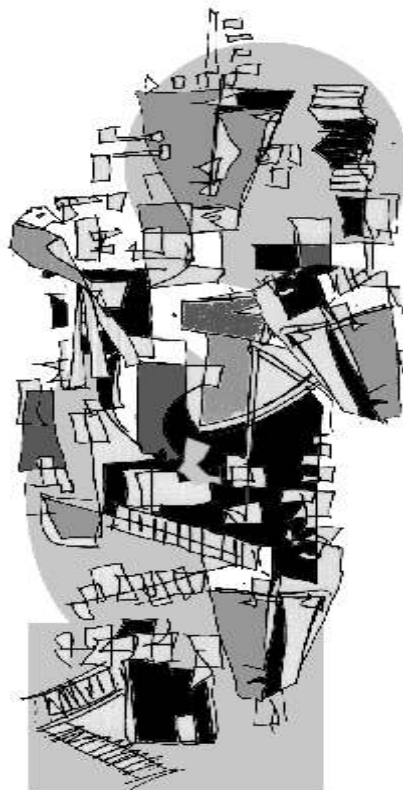
■ **वर्तमान समय में साहित्य, समाज पर, प्रभाव छोड़ने में कितना सफल रहा है ?**

- लगभग शून्य, लगभग नगण्य। "परस्परं हि प्रशंसति, अहो रूपं अहो ध्वनि" वालों पर कोई क्यों विश्वास करेगा ? विश्वास का यह संकट ही अच्छी रचनाओं को भी सामने नहीं आने देता -- "नीके दिन जब आइहैं"...! जब तक चचा-चमचा की प्रवृत्ति विद्यमान है, तब तक यह तथाकथित साहित्य हमें यूँ ही तड़पाता रहेगा।

■ **आप युवा साहित्यकारों के लिए क्या कहना चाहेंगे ?**

- मुकेश जी, मैं अदना-सा आदमी हूँ। उपदेश देने में कतई विश्वास नहीं रखता। हाँ ! यह याद रहे कि जब हम किसी की प्रशंसा करते हैं, तो प्रायः कह देते हैं कि 'बन्दा है पढ़ा-लिखा।' इसमें 'पढ़ा' और 'लिखा', दोनों समानरूपेण महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए, यदि लिखने से पहले हम कुछ पढ़-भी लें, तो अच्छा रहेगा।

सम्पर्क : 1218, सेक्टर- 13, कुरुक्षेत्र; मोबाईल : 9896707075





हरभगवान चावला



जश्न

अ

जीब औरत है यह, एकदम निर्मोही। चेहरे पर शिकन तक नहीं है। अभी उम्र ही क्या थी इसके पति की, साठ का भी नहीं था।

– ऐसी हालत में तो औरतों का विलाप थमता ही नहीं। विलाप तो दूर, मैंने

तो इसे रोते हुए भी नहीं देखा।

– और तो और शोक जताते हुए कोई औरत जब गले लगने के लिए बढ़ती है तो हाथ उठाकर रोक देती है।

– पति को पति समझा ही कहाँ इसने? ढाई सौ किलोमीटर दूर शहर में जा बैठी। पता नहीं क्या-क्या करती फिरती है वहाँ?

– संस्कार तो हैं ही नहीं। अरे भई रोना न भी आता हो तो भी दिखावे के लिए ही सही, रोया तो जाता है न, पर नहीं, इसको तो किसी की परवाह ही नहीं है।

– तीन चार महीने वह खाट पकड़े रहा। यह महारानी बीच में दो-चार दिन के लिए आई और लौट गई। पता था कि कभी भी मर सकता है, रह नहीं सकती थी यहाँ?

– शहर के गुलछे छोड़कर गाँव में कैसे रहती भला?

हस्सू को गुजरे अभी सप्ताह भर हुआ था। जहाँ भी चार-पाँच औरतें मिलतीं, बात हस्सू की पत्नी शीला की चल पड़ती और फिर उसके चरित्र के आख्यान सुनाए जाने लगते। औरतों के माध्यम से ये बातें मर्दों तक पहुँच गई थीं और अब मर्द भी चटखारे लेकर उसकी बातें करते। शीला को भी यह अहसास था कि गाँव भर में उसके चरित्र और व्यवहार को लेकर तरह-

तरह के क्रिस्से कहे जाते हैं। पति की मौत के बाद बारह दिनों तक औरतें अक्सर उनके घर आती रहीं। वह सिर पर दुपट्टा लिए शांत भाव से उनकी बात सुनती रहती और फिर विदा के समय हाथ जोड़ देती।

आज हस्सू की तेरहवीं थी। मंदिर के हॉल में एक छोटे मंच पर एक धर्मगुरु की मूर्ति रखी थी, उसके ठीक नीचे मृतक हस्सू की तस्वीर थी। एक छोटी तश्तरी में दीया जल रहा था, उसी तश्तरी में सुलगती धूप से सुवासित धुआँ उठ रहा था। एक टोकरी में फूलों की पत्तियाँ थीं। लोग आते, अंजुरी में फूल ले पहले धर्मगुरु की तस्वीर पर चढ़ाते, फिर हस्सू की तस्वीर पर। दस बीस रुपये वहाँ रखी थाली में डालते और सामने बिछे गद्दों पर आसन ग्रहण कर लेते। अब तमाम रिश्तेदार, परिचित तथा गाँव के लोग मंदिर के हॉल में उपस्थित थे। युवा पंडित जी ने पहले कुछ श्लोक पढ़े और फिर गरुड़ पुराण की इस अवसर के लिए बचाकर रखी गई महत्वपूर्ण पंक्तियाँ पढ़ीं। ये पंक्तियाँ हमेशा ही इसी समय के लिए बचा कर रखी जाती रही हैं। इन पंक्तियों का सार था – मृतक के लिए उनके परिवार के लोग यदि ब्राह्मण को दान देते हैं तो मृतक को मोक्ष प्राप्त होता है। मृतात्मा आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाती है। उसके बाद पंडित जी ने कुछ लोगों को भजन आदि गाने के लिए बारी-बारी से बुलाया। अभी तेरहवीं के लिए निर्धारित समय पंद्रह-बीस मिनट का समय बचा था कि पंडित जी ने घोषणा की – मृतक हंसराज उर्फ हस्सू की पत्नी अपने पति परमेश्वर को श्रद्धांजलि अर्पित करेंगी।

शीला माइक थाम कर सीधे लोगों से मुख़ातिब हुई- आप में से कुछ लोग मुझे नहीं जानते होंगे। तो पहले मैं अपना परिचय देती हूँ। जैसा कि पंडित जी ने बताया मैं मृतक की पत्नी हूँ। तैंतीस साल पहले मेरी इसके साथ शादी हुई थी। हमारे दो बच्चे हैं - एक बेटा और एक बेटी। पिछले पंद्रह-सोलह साल से मैं अपने पति से अलग गुड़गाँव शहर में रह रही हूँ। गाँव में मेरे बारे में बहुत-सी अफ़वाहें हैं और मुझे उनकी परवाह नहीं है। मेरे पति के बारे में गाँव के लोग सब जानते हैं। इसको हर रोज़ दो बोतल शराब और पाँच बंडल बीड़ी चाहिए थी। ज़मीन की आमदनी से इसका यह खर्च भी पूरा नहीं होता था, घर का खर्च तो क्या ही चलाता। बच्चों को पालने के लिए मैंने क्या नहीं किया? मैं पढ़ी लिखी थी, पर अपने खेत में काम करती थी। औरों के खेतों में भी काम करने जाती थी। पापड़ बनाकर बेचती थी। इसके बावजूद मैं अपने पति से रोज़ गालियाँ खाती, रोज़ पिटती। उसकी शराब और बीड़ियों के लिए पैसा मैं कहाँ से लाती? शादी के बाद के सत्रह साल मैंने जो नर्क जिया है, उसका कोई अंदाज़ा भी नहीं लगा सकता। मैं रोज़ रोती और रोज़ गाँव छोड़ देने की सोचती, पर यह सोच कर डर जाती कि पता नहीं बड़े शहर में हम कैसे रहेंगे? उस दिन तो हद ही हो गई जब इसने चार एकड़ ज़मीन सिर्फ़ पचास हज़ार में सेठ चंद्रभान के पास गिरवी रख दी। सेठ जी सामने ही बैठे हैं, बेशक पूछ लो उनसे। चार रुपये सैंकड़ा ब्याज़ था उस रकम पर। उस दिन मैंने तय कर लिया कि चाहे जो भी हो, अब यहाँ नहीं रहना। दो दिन बाद मैंने बच्चों के साथ गाँव छोड़ दिया। तब मेरी बेटी बारहवीं कक्षा में पढ़ती थी और बेटा दसवीं में। मुझमें गाँव छोड़ देने की हिम्मत असल में मेरे मायके गाँव की एक लड़की ज्योति के कारण आ पाई थी। ज्योति गुड़गाँव में ब्याही हुई थी। एक बार संयोग से हम दोनों अपने मायके में मिलीं। मेरे बारे में जानकर वह बहुत दुखी हुई और मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा कि मैं उसके पति के अस्पताल में नौकरी कर लूँ। उसने अपना फ़ोन नम्बर मुझे दिया था। उसे फ़ोन करने के बाद मुझे बहुत तसल्ली हुई। गुड़गाँव ज़ाकर मैंने न के अस्पताल में रीज़ोंक पी चियाँ बनाने की नौकरी शुरू की। बेटी ने पढ़ाई छोड़ दी और एक फैक्ट्री में जाने लगी और बेटा भी पढ़ाई छोड़ कर वेटर बन गया। हम मकान का किराया देते और हर महीने ब्याज़ के दो हज़ार सेठ चंद्रभान के खाते में जमा करवाते। बाकी बचे पैसे में किसी तरह गुज़ारा करते। सेठ के पचास हज़ार के कर्ज़ के बदले हमने एक लाख दस हज़ार रुपये चुकाए। क्यों सेठ जी मैंने ग़लत तो नहीं कहा?

सेठ चंद्रभान के कंठ से एक अस्पष्ट सी घुटी हुई आवाज़ निकली और फिर वह सिर झुकाकर बैठ गया। पूरे हॉल में



ख़ामोशी पसरी थी। शीला ने पानी पिया और फिर से बोलने लगी - मेरे पति ने मुझे वहाँ भी तंग करने में कसर नहीं छोड़ी। आठ-नौ महीने बाद ये वहाँ आया और बोला- अब मैं सुधर गया हूँ, मुझे कोई काम दिला दो। काम करने की नीयत हो तो शहर में काम की कोई कमी नहीं है। उस समय यह सचमुच सुधरा हुआ लगा। दो दिन इसने शराब नहीं पी। मैंने इसे पानी के कैम्पर दुकानों पर पहुँचाने वाली कंपनी में लगवा दिया। यह जब काम से लौटता तो शराब तो पिए होता पर होश में होता, ढंग से बात भी करता। मुझे इसमें ज़्यादा दिक्कत नहीं थी। लेकिन बस पन्द्रह दिन ही ये शरीफ़ रहा। एक दिन ये शराब में दुन्न घर आया और गालियाँ बकने लगा। कहते हैं न कि मुसीबत अकेली नहीं आती। ये गालियाँ बकता नाली पर पड़ा था और उधर गाँव से सेठ चंद्रभान का फ़ोन आया कि इस बार ब्याज़ की किश्त खाते में जमा नहीं हुई। मैंने दो दिन पहले बेटे को सेठ के खाते में जमा करवाने के लिए दो हज़ार रुपये दिए थे, फिर जमा क्यों नहीं हुए? आधी रात हो चुकी थी कि बेटा लौटा। मैंने आते ही पूछा - सेठ के ब्याज़ की किश्त जमा क्यों नहीं करवाई? वह सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। मेरा क्रोध बढ़ता गया और पहली बार मैंने बेटे पर हाथ उठा दिया। पता चला कि बेटा जल्दी पैसा कमाने के चक्कर में उस पैसे को सट्टे में लगा आया था। मैंने एक डंडा उठाया और बाप-बेटे की धुनाई शुरू कर दी। मेरा पति तो चार-पाँच डंडे खाने के बाद उठकर भाग गया और बेटा चुपचाप तब तक मार खाता रहा, जब तक मैं मारते-मारते थक नहीं गई। चारों तरफ़ तमाशबीन थे। तमाशा अगर मुफ़्त में

देखने को मिल रहा हो तो कौन नहीं देखना चाहता ? बेटा भी जब कहीं चला गया तो हम माँ-बेटी सारी रात रोती रहीं। सुबह बेटा हाथ जोड़े मेरे सामने खड़ा था और उधर मकान मालिक घर छोड़ देने का आदेश देने आ गया। उस समय उसकी आवाज़ और आँखों में जो हिकारत थी, उससे मैंने अपने आप को बहुत अपमानित महसूस किया। हमने उसी दिन वह घर छोड़ दिया।

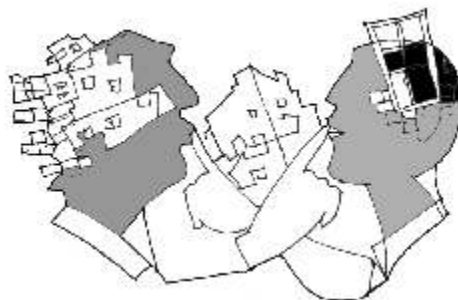
शीला का गला रुंध गया था। इस बार उस भीड़ में से किसी ने पानी का गिलास उसकी तरफ़ बढ़ा दिया। पानी पीकर वह आगे बोली – हर साल छः-आठ महीने में ये आ जाता, वही पुराना राग अलापता हुआ कि मैं सुधर गया हूँ, मुझे कोई काम दिला दो या फिर नशे में चूर गालियाँ बकता हुआ। मैं सौ-दो सौ देकर भगा देती, नहीं जाता तो धुनाई कर देती। जब भी वह आता, मुझे मकान खाली कर नया मकान देखना पड़ता। यह भी हो सकता है कि कभी वह नया मकान न ढूँढ़ पाया हो और लौट गया हो। सेठ चंद्रभान का कर्ज उतारने के बाद मैंने इसे किसान क्रेडिट कार्ड बनवा दिया। एक तो क्रेडिट कार्ड पर ब्याज दर कम थी, दूसरा ज़मीन पर किसी सूदखोर की लालची नज़र का खतरा नहीं था। कार्ड में सिर्फ़ डेढ़ लाख की लिमिट बनवाई। ये चिल्लाता तो रहा कि कई बैंक तीन लाख की लिमिट बना रहे हैं, फिर यहाँ डेढ़ क्यों, पर मैं अड़ गई कि गाँव के बाहर के किसी बैंक में खाता नहीं खोलेंगे। मैंने उसे समझाया कि तू शराबी आदमी है, बाहर गाँव से पैसे लेकर आएगा तो कोई रास्ते में ही तुझे लूट लेगा या तुझे मार कर फेंक जाएगा। तब तक ये मुझसे थोड़ा दबने भी लगा था, सो ज्यादा विरोध नहीं कर पाया। मैनेजर साहब भले आदमी थे। हम हर छमाही ब्याज भर कर खाते को उलट-पलट करवा देते फिर भी वे इस पर भुगतान का दबाव बनाए रखते। कभी-कभी तो यह कुछ पैसा बैंक में जमा भी करवा देता।

खैर, ज़िंदगी चलती रही। मैंने अपने दोनों बच्चों की शादियाँ यहीं गाँव में आकर ही कीं, यह तो सब जानते हैं। बेटी का कन्यादान भी इसी ने किया। बेटे को शादी के बाद यहीं रहने के लिए मजबूर किया। क्यों ? क्योंकि मैं दिल से चाहती थी कि कोई मेरे पति का खयाल रखे। वो बहुत बुरा था, पर था तो इन्सान ही और उसने भी सुख कब पाया ? मैं चाहती थी, उसे ढंग से रोटी कपड़ा मिलता रहे। मेरे बेटे बहू ने उसकी भरपूर सेवा की। मुझे जब पता चला कि उसे कैन्सर है तो उसका इलाज मैंने करवाया, पर मेरी उपस्थिति से वो असहज हो जाता था। मुझे देखते ही बेचैनी से कराहने लगता। मैं इसके पास जाती तो इसके हाथ बँध जाते, जैसे कि माफ़ी माँग रहा हो। मेरे सामने ये न कुछ खाता था, न पीता था, इसलिए मैं यहाँ नहीं रही। बच्चों को पैसे देने के साथ हिदायत भी दी कि इसको जितनी शराब

और बीड़ी की ज़रूरत हो, वे देते रहें। यह सच है कि उसने न माँ-बाप को सुख दिया, न भाई-बहनों को, न पत्नी और बच्चों को, न समाज के लिए कुछ किया। वो मेरा पति था, उसके जाने का दुख है मुझे, लेकिन उसके जाने की खुशी भी है। जैसे एक माँ अपने बेटे को नौकरी के लिए विदा करते हुए बिछुड़ने का दर्द महसूस करती है, दुखी भी होती है पर भीतर से उसे संतोष भी होता है कि बेटा अब अच्छी ज़िंदगी गुज़ार पाएगा। उसी तरह जीवन साथी के बिछुड़ने का मुझे दुख है, साथ ही संतोष भी कि शायद हम भी सुख के दिन देखेंगे। बैंक का डेढ़ लाख का कर्ज हम माँ-बेटा मेहनत करके उतार देंगे। अब मैं भी अपने बेटे, बहू और पोते के साथ यहीं रहूँगी। आप सब यहाँ हमारे दुख में शामिल होने आए थे, पर आप बिना किसी दुख के इस जश्न में शामिल हों। वैसे भी हमारे समाज में तेरहवीं दुख के नाम पर मनाया जाने वाला जश्न ही तो है। सब लोग हलवे के लिए मना कर रहे थे, पर मैंने हलवा बनवाया है। सभी लोग भोजन का आनन्द उठाएँ। आखिर में एक बात पंडित जी से कहना चाहती हूँ- उसने पंडित की ओर देखा और बोली – आपने कहा था पति परमेश्वर ! मैं चीख-चीख कर कहती हूँ कि वो मेरा परमेश्वर नहीं था। आप तो युवा हैं। आप बताइए क्या पति सचमुच परमेश्वर होता है ? क्या इस तरह के शब्द औरतों पर हर जुल्म सहकर भी चुप रहने का दबाव नहीं बनाते ? औरत हर हाल में पति परमेश्वर की दासी बनी रहे, इसके पीछे क्या यही नीयत नहीं है ? पति अगर इन्सान की तरह आचरण करे तो पत्नी को किसी परमेश्वर की ज़रूरत नहीं। यहाँ बेटी सभी औरतों को मैं कहना चाहती हूँ कि ‘पति परमेश्वर’ सबसे बड़ा पाखण्ड है। ज़रूरी है कि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे को इन्सान समझें। कोई आदमी कभी किसी का ईश्वर नहीं हो सकता।

शीला अब एकदम चुप थी और संजीदा। तभी एक ताली ने हॉल की खामोशी में जोश भर दिया। ताली शीला की बेटी बजा रही थी। और फिर सारा हॉल क्रमशः तालियों की गूँज से भरता चला गया।

सम्पर्क : 406, सेक्टर - 20, हुडा, सिरसा (हरियाणा)





महेन्द्र सिंह 'सागर'

भूत का भय

भू

त यह शब्द सुनते ही मन में झुरझुरी-सी दौड़ जाती है। रोम-रोम खड़ा हो जाता है और मन किसी अनजान भय से कांप उठता है। सुनी हुई बातों के आधार पर तरह-तरह की कल्पनाएँ जन्म लेने लगती हैं। भूतों की

मोटी-मोटी आँखें बाहर को निकली होती हैं और बोहों के बालों से ढकी होती हैं। गालों पर बड़े-बड़े गड्ढे, शायद चोट से बने होते हैं। वे उन्हें ढकने के लिए चेहरे पर बाल बिखराए रखते हैं। उनके बाल हवा से जब उड़ते हैं तो चेहरे की भयानकता और बढ़ जाती है। इतना ही नहीं भूतों के पंजे पीछे की ओर मुड़े होते हैं। उनके पैर निशान नहीं छोड़ते हैं। हाथ पैरों के नाखुन जंगली जीवों से भी बड़े होते हैं। उनका शरीर पारदर्शी होता है। जिस कारण उसकी नशों में बहता हुआ रक्त दिखाई देता है। उनकी कमर सदा झुकी रहती है। वे सदा सफेद वस्त्र पहनते हैं। इस प्रकार की न जाने कितनी बातें भूतों के बारे में बचपन से लेकर आज तक सुनते आए हैं।

भूत वास्तव में होते हैं या नहीं, इस इस बारे में लोगों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कुछ का मानना है, भूत होते हैं। उनका अस्तित्व होता है। उनके अनुसार भूत आत्माएं होती हैं; जो यमलोक से एक निश्चित समय के लिए निकली होती हैं। यमलोक से निकलते समय उन्हें एक शरीर की प्राप्ति होती है लेकिन यदि किसी कारण से वह शरीर नष्ट हो जाए तो, आत्मा के लिए यमलोक जाने के दरवाजे तब तक बंद हो जाते हैं जब तक वह पृथ्वी पर अपना समय पूरा नहीं कर लेती। इस अवधि

में वे भूत बनकर पृथ्वी पर भटकती हैं। वे समय-समय पर आम आदमी को अपने होने का आभास दिलाती हैं। हाँ, भूत अधिकतर उसी समय निकलते हैं जब लोग गहरी निद्रा में होते हैं। यानी कि भूत आम जनता का सामना करने से डरते हैं या फिर कुछ और है? कहा नहीं जा सकता।

दूसरी ओर कुछ लोगों का मानना है, भूत नहीं होते। यह सिर्फ लोगों को डराने के लिए काल्पनिक नाम है। बीता हुआ समय भूत कहलाता है। बस इसी आधार पर भूत का जन्म हुआ है और काल्पनिक कथाओं में इनके कार्यों के आधार पर इनको अलग-अलग नाम जैसे प्रेत, पिचास, डैकुला इत्यादि प्रदान कर दिए हैं। लोगों में इनका भय व्याप्त करने के लिए काल्पनिक किस्से चटकारे ले-ले कर सुनाए जाते हैं। जिससे भूत-भूतनियों की छवि लोगों के मन पर स्थाई रूप से अंकित हो जाए।

वास्तव में सच क्या है? मैं नहीं जानता लेकिन एक घटना ने भूत के बारे में मेरे विचार बदल दिए। मुझे लगा, मुझे अपने अनुभव आपसे सांझा करने चाहिए ताकि भूत के बारे में आप अपनी धारणा को निश्चित रूप प्रदान कर सकें।

शिक्षण मेरा मन पसन्द विषय रहा है। हो भी क्यों नहीं, इससे जुड़ा इंसान निरन्तर बालको के साथ जुड़ा रहता है और बालमन की कोमलकांत भावनाएँ उसे निरन्तर बालक बनाए रखती हैं। बचपन इंसान के जीवन का बेहतरीन काल होता है। न उसे आज की चिंता होती है न कल की फिक्र। खैर, चालीस पार का इंसान इतना बेफिक्र तो नहीं हो सकता लेकिन संगत

अपना प्रभाव अवश्य छोड़ती है। जिस कारण इंसान समय से पहले बूढ़ा नहीं होता है। यूँ भी शिक्षण देशहित और समाजहित का कार्य है। समाज जितना सम्मान एक अध्यापक का करता है उससे कई गुणा अध्यापक को अपने कार्य पर ध्यान देना चाहिए। बस, इसी धारणा के वशीभूत होकर मैं अपने शिक्षण में सुधार के लिए प्रयासरत रहता हूँ।

शिक्षण तकनीक में सुधार का एक अवसर मुझे मिला। मुझे पता चला कि शिक्षा विभाग पाठ्यक्रम का नाट्य रूपांतरण करवाना चाहता है ताकि शिक्षण कार्य रोचक हो सके। बस फिर क्या था, मनपसंद कार्य था इसलिए मैंने भी कर दिया आवेदन और पहुँच गया एक सप्ताह की नाट्य लेखन कार्यशाला में। वहाँ मुझे और एक अन्य अध्यापक नरेन्द्र को कमरा नंबर एक सौ ग्यारह में ठहराया गया। पहली मुलाकात से ही हमारी घनिष्ठता बढ़ने लगी। हम देर रात तक आपस में बातियाते रहे। बातों-बातों में कब नींद आ गई मुझे कोई आभास नहीं हुआ। शायद यह लंबे सफर की थकान का असर था।

सुबह हमारे बीच कोई खास बात नहीं हुई। नास्ते की मेज पर भी हमारे बीच सामान्य बातचीत होती रही। नास्ते के बाद मैंने नरेन्द्र से कहा, “यहाँ बैठकर क्या करेंगे? आओ कार्यशाला के कक्ष में चलकर बैठते हैं।”

नरेन्द्र ने कहा, “आप चलो, मुझे थोड़ा काम है। मैं बाद में आता हूँ।”

निश्चित समय पर कार्यशाला शुरू हो गई। वक्ता अपना वक्तव्य देने लगे और मैं ध्यान से सुनने में लीन हो गया। मुझे नहीं पता नरेन्द्र कक्षा में आया या नहीं। वह दोपहर के खाने के समय मुझसे मिला और कहा, “मैं घर जा रहा हूँ।”

“क्या हुआ?” मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

“रात को मेरी पसली में दर्द था?”

“क्या? ... मुझे जगाया क्यों नहीं।” मैंने नाराढ़ गी जताते हुए कहा।

“सफर की थकान के कारण आप गहरी नींद में...।”

“एक दर्द से तड़पता रहे और दूसरा चैन की नींद सोए, क्या यह सही है?” मैंने पूछा।

“मुझे लगा जब दर्द मुझे ही सहना है तो आपकी नींद

क्यों खराब करूँ।”

“मुझे लगता है, आपने मुझे मन से दोस्त स्वीकार नहीं किया...?”

“ऐसी कोई बात नहीं है। किसी को परेशान करना मुझे अच्छा नहीं लगता।” नरेन्द्र ने कहा, “मैं जा रहा हूँ। यह कमरे की चाबी संभालो।” चाबी मुझे देने के बाद वह थोड़ी देर वहीं खड़ा रहा जैसे कुछ कहना चाह रहा हो। मैं भी बुझे मन से उसे देखता रहा और कहा, “दोस्त मुझे चाबी संभालने की आदत नहीं है।”

“अच्छा! बाते बनाना बन्द करो।” और मुस्कुराते हुए जाने लगा। मैं खड़ा उसे देखता रहा। दस-बारह कदम जाने के बाद वह मुड़ा और बोला, “अपना ख्याल रखना।”

मैंने मुस्कुरा कर हाथ हिलाते हुए कहा, “ठीक है।” और खाना खाने के लिए चला गया।

शाम को कार्यशाला से सीधा अपने कमरे में आ गया। यह नितांत अकेलापन मुझे खूब रास आया। मैं देर रात तक लेखन कार्य करता। मेरे लिखने की गति अन्य दिनों की तुलना में बहुत ज्यादा थी क्योंकि घर परिवार से दूर लिखने का अपना अलग ही मजा था। इन दिनों मेरे ऊपर गज़लें लिखने का भूत सवार था।

‘भूत’ यहाँ भूत से मेरा मतलब भटकती आत्मा या बीते हुए समय से नहीं था। इसे आप जुनून कह सकते हैं। बहुत अध्ययन के बाद मैंने गज़ल कहना सीखा था। कार्यशाला में मिले काम के अतिरिक्त पाँच दिनों में मैंने पाँच गज़लें लिख डाली। अब तक इतनी व्यस्तताओं के समांतर लेखन को इतना समय मैंने कभी नहीं दिया था। मैं बहुत खुश था लेकिन मैंने महसूस किया कि मुझे नींद नहीं आ रही है। मेरा सारा शरीर एक विशेष प्रकार की अकड़ महसूस करने लगा।

मुझे लगा, मैं ठीक से सो नहीं पा रहा हूँ। इन दिनों लाख चाहकर भी रात्रि को दो बजे से पहले कभी नहीं सो पाया और साढ़े चार बजे तक आँख खुल जाती। मेरा सिर भारी रौने लगा। इस दौरान वक्त निकाल कर कई बार दिन में सोने का प्रयास किया लेकिन नींद मेरे आसपास नहीं फटकती।

छटे दिन शाम को मैंने अपनी समस्या की चर्चा साथी अध्यापकों से की। अधिकतर के अनुसार सोने के लिए मैं घर के माहौल का अभ्यस्त हूँ। इस पर मैंने कहा, “मैं अक्सर



सेमिनारों में भाग लेता रहता हूँ और विद्यालय के बालकों के साथ भी घर से बाहर जाता रहता हूँ। मेरे साथ यह समस्या नहीं हो सकती।”

मैंने गम्भीर होते हुए कहा, “सच में मुझे नींद नहीं आ रही है। सारा बदन अकड़ महसूस करता है। बार-बार अंगड़ाई लेकर खुद को रिलैक्स करना पड़ता है।”

“हूँ..., ये सामान्य परिस्थितियाँ नहीं हैं। आपको डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए।” बलवान सिंह ने कहा।

मैं कुछ कहता उससे पहले ही शक्ति सिंह ने प्रश्न किया, “आप किस कमरे में ठहरे हैं?”

“सीढ़ियों के पास वाले में।” मैंने कहा।

“नम्बर क्या है?” शक्ति सिंह ने फिर प्रश्न किया।

“एक सौ ग्यारह।”

“आपके रूम पार्टनर के साथ भी यही समस्या है?”

“मेरा रूम पार्टनर एक रात ठहरने के बाद छुट्टी लेकर चला गया।”

अब माहौल गम्भीर हो चुका था। इसी भाव में शक्ति ने पूछा, “क्या हुआ उसे?”

“पत्थरी का दर्द हुआ था।”

“तुम यह सब क्यों पूछ रहे हो?”

“यूँ ही।”

शक्ति सिंह के इस छोटे से उत्तर ने मेरे अन्दर जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। मैंने कहा, “कोई बात अवश्य है?”

“नहीं कोई बात नहीं है। वैसे भी भूली-बिसरी बातें भूल जाना ही बेहतर होता है।” शक्ति सिंह ने कहा।

“मैं आपसे इत्तेफाक नहीं रखता।” मैंने विरोध करते हुए तर्क दिया, “यादें हमारी धरोहर होती हैं।”

“इस हॉस्टल में एक लड़की ने फाँसी खाकर आत्महत्या की थी।” शक्ति सिंह ने कहा, “क्या इसे धरोहर कहोगे? जिसके कारण यहाँ अन्य लड़कियों ने भी रहने से इनकार कर दिया और हॉस्टल बन्द करना पड़ा।”

“नहीं।”

“मुझे लगता है आप उसी कमरे में हैं।” शक्ति सिंह ने कहा।

“क्यों डरा रहा है?” भूप सिंह ने कहा।

“मैं चुप ही था, सच्चाई सुने बैंगर भाई को चैन मिल रहा था।” शक्ति सिंह ने कहा।

“डर! मुझसे बहुत दूर रहता है।” मैंने शेखी बघारते हुए कहा, “मैं चार साल तक ऐसे स्कूल में सोया हूँ जिसके पेड़ पर एक व्यक्ति फाँसी खाकर आत्महत्या की थी।”

“कभी रात को नदर नहीं आया।” ईश्वर सिंह ने पूछा।

“जागते हुए कभी भूत नदर आते नहीं और सोने के बाद मुझे होश नहीं रहता।” मैंने खुद को निडर साबित करने का प्रयास किया, “वैसे उसने किस कमरे में आत्महत्या की थी?”

“यह तो शायद किसी को नहीं पता। बहुत पुरानी बात है।” शक्ति सिंह ने गहरी साँस लेने के बाद कहा, “शायद उसकी आत्मा को भी मुक्ति मिल गई होगी।”

“समय के साथ सबको मुक्ति मिल जाती है।” मैंने उसकी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा।

“छोड़ो यार, क्या बातें लेकर बैठ गए। चलो खाने का समय हो गया है।” भूप सिंह ने बात बदलते हुए कहा।

रात नौ बजे तक हम खाना खाकर अपने-अपने कमरों में सोने चले गए।

मैं नई गज़ल लिखने में व्यस्त हो गया। काफी मशक्कत के बाद चार शेर ही बन पाए। तंग काफ़िया ले लिया। मैं मन ही मन बुदबुदाया और मक्ते के लिए प्रयास करने लगा। बहुत सोचने के बाद भी नहीं बना तो शांत होकर लेट गया।

एकाएक मुझे शमक ठोईब तेंय आने लगी। मन एकदम से घबरा गया। मेरी नजरें कमरे की प्रत्येक वस्तु का अवलोकन करने लगी। सर्वप्रथम मेरी नजर कमरे में अलमारी पर लिखे गए शब्द ‘क्रश्च’ पर गई।

सबसे पहले ख्याल आया, यह किसी आशिक ने लिखा होगा। दूसरे क्षण खुद उसका खंडन किया, यह कैसे हो सकता है? यह लड़कियों का छात्रावास रहा है। भला कोई लड़का यहाँ नाम कैसे लिख सकता है। जरूर यह उस लड़की का नाम होगा, जिसने आत्महत्या की होगी।

इस विचार से सारे शरीर में झुरझुरी-सी होने लगी। मैंने एकदम से गर्दन को झटका और अपने आप से प्रश्न किया, डर गया?

उत्तर देने के स्थान पर मैं डरते-डरते मुस्कुरा उठा। न



चाहते हुए भी मेरी नजर फिर से अलमारी पर चली गई। जिसके दूसरे दरवाजे पर लड़की के फटे हुए चित्र के नीचे 'SANCY' लिखा था। 'सेंसी' यह नाम नहीं हो सकता। जरूर इसका प्रथम अक्षर 'N' होगा। इस बारे में मेरा विचार विश्वास में बदलने लगा क्योंकि प्रथम अक्षर आधा लड़की की तस्वीर के नीचे छुपा हुआ था। इसी के साथ एक और प्रश्न कौंधा, क्या मरने वाली लड़की का नाम नैंसी था ?

इसका उत्तर कौन दे। कमरे में मेरे अतिरिक्त कोई नहीं था। भला उत्तर देता भी कौन ? भय के कारण मेरे अंदर से उत्तर पाने की जिज्ञासा शांत हो चुकी थी। मन के आंतरिक भावों को ज्यों-का-त्यों कागढ़ पर उकेरना संभव होता तो भयाक्रांत मन का सही चित्रण आपके सामने प्रस्तुत कर पाता। जब आपको पता चले आप आत्महत्या करने वाले के कमरे में हैं तो बाहर चलने वाली हवा की सरसराहट भूत की आवाज प्रतीत होने लगती है। कुछ ऐसा ही हाल मेरा था।

आज रात भय से मेरी मृत्यु हो गई तो ? मैंने खुद से ही प्रश्न किया। मुझे इसी क्षण कमरे को छोड़ देना चाहिए और किसी अन्य साथी के कमरे में चला जाना चाहिए।

अगले ही क्षण ख्याल आया, रास्ता बदलने वाले डरपोक लोगों को भूत नहीं छोड़ते हैं। कहीं कमरा बदलना मेरे लिए घातक न हो जाए। इस विचार ने मुझे कमरे में रहने के लिए विवश कर दिया। डर के कारण मैं इधर-उधर भी नहीं देख रहा था परंतु मेरे लेखकीय मन ने हौसला बनाए रखा और निर्णय किया, मैं अपने हालात को कागज पर उकेरूंगा। यदि जीवित रहा तो ये पल सदैव मेरी रचना में बसे रहेंगे और मुझे एहसास कराते रहेंगे मैं कितना निडर हूँ ?

पत्तों की सरसराहट के कारण न चाहते हुए भी मेरी नदर खिड़की से बाहर चली गई। खिड़की से मुझे डाइट भवन की दीवारों पर बने चित्र धुंधले-धुंधले से नजर आए। लेकिन यह क्या ? मुझे लगा खिड़की के पास से कोई गुजरा है। इस समय कौन हो सकता है ? मन के ख्याल घूम फिर कर वहीं अटक जाते, वह लड़की तो नहीं थी ?

वह कैसे हो सकती है ?

हो क्यों नहीं सकती। उसकी आत्मा साठ-सत्तर वर्ष के लिए धरती पर जरूर आई होगी। इस समय वह भ्रमण पर निकली होगी। मेरी घिग्गी बन्द गई। मुझे लगा मैं गया काम से। मेरी नजर खिड़की से नहीं हट रही थी। मुझे लगा यह मेरे जीवन की अंतिम रात है। क्या जरूरी था इस कार्यशाला में आना ? घर चैन से सो रहा होता। बच्चों के जीवन में भी कांटे बो दिए। कुछ और सोचता उससे पहले ही फिर वही साया खिड़की के पास से

गुजरा। इस बार वह एक नहीं दो बार नदर आया। एकाएक मन कह उठा, ओह ! यह दीवार के पास लगे पौधे का साया है। मन को कुछ राहत मिली।

निडरता के कारण या भय के कारण यह पक्के तौर पर मैं नहीं बता सकता लेकिन मेरी आँखें फिर से कमरे का अवलोकन करने लगी। कमरे में दो

अलमारियाँ थी। एक में मेरा सामान रखा था। जिसे मैं रोज ही खोलता था परंतु दूसरी को एक दिन सरसरी तौर पर देखा था। याद करने पर ध्यान आया इसमें एक सिलार्ड मशीन व एक भगवान की फोटो है। फोटो में गणेश जी पक्का हैं। उनके साथ कौन हैं मुझे याद नहीं आया। मेरे मन ने कहा, मुझे अलमारी खोलकर निरीक्षण करना चाहिए। भय के कारण अलमारी को खोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी लेकिन मन की उत्कंठा अलमारी को खोलने के लिए बार-बार प्रेरित कर रही थी। डरा हुआ इंसान जैसे निर्णय लेता है मैंने वैसा ही निर्णय लिया और ढुंढ से कहा, "तुझे क्या करना है, कुछ भी हो। बैल को मारने के लिए मैं क्यों बुलाऊँ। एकाएक मस्तिक के किसी कोने से आवाज आई, क्यों घबरा है ? पाँच रातें इस कमरे में ही बिताई हैं। अब तक कुछ नहीं हुआ तो, आज रात भी कुछ नहीं होगा ?

कुछ हिम्मत बंधी तो मैंने महसूस किया, मेरा गला सूखा हुआ है। बोतल उठाकर पानी पीया। गले को तर कर हिम्मत और बढ़ गई तो निर्णय किया, मुझे अलमारी खोलकर देख ही लेनी चाहिए। मैं हिम्मत बाँध ही रहा था कि मुझे उल्लू की



आवाढ़ सुनाई दी। मेरी हिम्मत जवाब दे गई नस-नस में फिर से भय का संचार हो गया।

डरी हुई आँखों ने फिर कमरे को निहारा। इस बार वे दीवार पर लगी तस्वीर पर अटक गई जिसमें तीन बच्चे मुस्कुरा रहे थे। मुझे लगा ये मेरे भयभीत होने पर मुस्कुरा रहे हैं। मुझे उनका व्यंग्य नहीं सुहाया। मन ही मन कुछ हिम्मत बंधाई। अगले ही क्षण लगा, वे मुस्कुरा नहीं रहे बल्कि अपनी मोटी-मोटी आँखों से मुझे घूर रहे हैं। उनकी मोटी-मोटी आँखें बहुत डरावनी प्रतीत होने लगी। जैसा मैंने सुन रखा था वे आँखें निरन्तर बाहर की ओर निकल रही थी। मुझे लगा अभी इनके चेहरे का रूप भी बदल जाएगा और मेरा शरीर पसीने से नहाने लगा। बचने का कोई रास्ता न देख सब भगवान भरोसे छोड़ने की सोची और कबूतर की भाँति आँख बंद कर रटने लगा परमात्मा को। इस बीच ख्याल आया मैं नाहक डर रहा हूँ। ये बच्चे हैं और बच्चे भूत नहीं होते। कुछ हौसला होने मैं फिर से तस्वीर को देखने लगा, इस बार देखा बीच वाला लड़का तौलिये लपेटे हुए है। यह भूत नहीं है। भूत सफेद वस्त्र पहनते हैं। तस्वीर के ऊपरी तरफ 'GOOD MORNING' लिखा हुआ भी नढ़र आया। इस गुड मॉर्निंग मुझे पूरी तरह भय मुक्त नहीं कर सका। हाँ, कुछ राहत अवश्य महसूस की।

इस कमरे में और ऐसा कुछ नहीं था जो मुझे बेचैन करता। घूम फिर कर फिर ख्याल बन्द अलमारी की तरफ लौट चले। उसे खोलने की हिम्मत नहीं बंध रही थी। दिन में देखी हुई सिलाई मशीन फिर से मन में शंका उत्पन्न करने लगी। यह मशीन किसकी हो सकती है? क्या उस लड़की... ?

नहीं, पढ़ने वाली लड़की भला सिलाई मशीन किसलिए लाती। यह जरूर डाइट के किसी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की होगी जो अपने छोटे से घर में इसे रख नहीं पाता होगा। इस विचार से कुछ राहत मिली।

अगले क्षण ध्यान अलमारी में रखी भगवान की तस्वीर पर चला गया। यह किसने रखी होगी। अब यहाँ बच्चे नहीं रहते हैं। फिर यह तस्वीर किसने रखी होगी। कुछ तो है इस कमरे में ?



अब मुझे प्रबन्धकों पर नाराढ़ गी होने लगी। ऐसे कमरों को उन्हें अलॉट नहीं करना चाहिए। करें भी तो कम से कम दो को जरूर ठहराना चाहिए। इस विचार ने मुझे नरेन्द्र की याद दिला दी। मेरा मन कहने लगा तू उससे ढ़ोन कर पूछ, क्या उसे सच में स्टोन पेन हुआ था। कागढ़ पैन एक तरफ रख दिए और फोन उठा लिया। तभी ख्याल आया क्या इतनी रात गए ठीक रहेगा ?

नहीं, बिल्कुल नहीं।

कोई और रास्ता न देख हनुमान चालीसा का वाचन करने लगा। अब काफी हद तक भय दूर हो चुका था। मैंने लाइट बन्द कर ध्यान मोबाइल पर लगाने का प्रयास किया लेकिन फिर भी रह-रह कर ध्यान भटक रहा था।

मैं कभी ढ़ेसबुक, कभी व्हाट्सएप देखने लगा। मन के ख्याल आँखों का साथ नहीं दे रहे थे। तभी हॉस्टल में ही ठहरे साथी श्री भगवान बब्बा की पोस्ट नढ़र आई। मैंने उस पर अपनी प्रतिक्रिया की। अगले क्षण मेरा मोबाइल घनघना उठता है। अनजान नम्बर देख मैंने उसे काट दिया और समय देखा, समय हुआ था ग्यारह बजकर इक्यावन मिनट। भूतों का सही समय तो अब होने वाला है। इस विचार ने मन में फिर से भय का संचार कर दिया। तभी ख्याल आया मुझे पूछना चाहिए, इतनी रात गए किसने फोन किया है। उधर से आवाढ़ आई, “हाँ जी, कौन ?”

मैंने अपना नाम बताया।

“कहाँ से बोल रहे हैं ?”

“पंचकूला से।” मैंने कहा।

“अरे! पंचकूला में कहाँ से ?” दूसरी तरफ से आवाढ़ और अधिक रोबीली हो गई थी।

आमतौर पर मैं ढ़ोन पर अपना परिचय अनजान व्यक्ति को नहीं देता हूँ। शायद भय की वजह से मैं अपनी सारी अकढ़ भूल चुका था और यंत्रवत-सा उत्तर दिए जा रहा था।

“डायट हॉस्टल से।” मैंने कहा।

“इतनी रात को मेरा पास ढ़ोन क्यों किया ?”

“जी, आप कौन बोल रहे हैं ?” मैंने पहली बार प्रश्न किया।

“सहरावत, डायरेक्टर सहरावत बोल रहा हूँ। कोई समस्या है ?”

“जी नहीं, वैसे मैंने ढ़ोन नहीं किया है। मेरे दूसरे नंबर पर पहले आपका ढ़ोन आया था।”

“इस समय जागने का कारण?” उत्तर के स्थान पर उन्होंने प्रश्न किया।

“कोई समस्या हो तो, निसंकोच कहो।”

एकाएक मुझे लगा, यह आवाज कार्यशाला के साथी भूपसिंह की है।

मैंने कहा, “आप भूपसिंह जी बोल रहे हैं?”

“बोल रहा हूँ, फिर नीचे क्यों बैठा है? आज्या ऊपर।”

अंधा क्या चाहे? एक आँख। मेरी मन चाही मुराद पूरी हो गई। मैंने कहा, “अभी आया।”

वहाँ पहुँच कर मैंने पूछा, “क्या बात, अभी तक सोए नहीं?”

“हमारी छोड़ो, आप बताएं? आप क्यों नहीं सोए?”

“नींद नहीं आ रही है।” मैंने कहा।

“यही स्थिति हमारी है।” भूपसिंह ने कहा।

रात दो बजे तक हम साहित्य पर चर्चा करते रहे। इस दौरान श्रीभगवान बब्बा ने मेरे ढ़ोन साथ वाले कमरे में चार्ज लगा दिया। भूत वाली बात की मैंने कोई चर्चा नहीं की और मैं भी वही उनके साथ सो गया। सुबह सात बजे सबसे पहले मेरी आँख खुली। खिड़की में मुझे सूरज चमकता दिखाई दिया। मैंने तुरन्त कहा, “उठो, सूरज निकल आया।”

श्रीभगवान बब्बा मेरी आवाज के साथ ही उठ गया। उसने दूसरे कमरे को खोल मेरा ढ़ोन दिया और मैं नीचे मेरे कमरे में आ गया। नित्य क्रियाओं से निवृत्त होते ही रात के ख्याल ताजा होने लगे। मैं अलमारी खोलने की सोचने लगा लेकिन मन का भय कहता रहने दे। तुझे क्या लेना है। आज घर चला जाएगा। आखिर, मन को कब तक समझाता? दिन में भय किस बात का। शायद ढ़ुद को निडर दर्शाने के लिए खोल दी अलमारी। उसमें एक सिलाई मशीन, मशीन पर आधी सफेद रंग की गिट्टी और धागा सुई में लगा था। इसका मतलब यह चालू हालत में थी। एक तस्वीर जिस पर मुख्य मूर्ति लक्ष्मी की। उसके दाएं और ऊपर सरस्वती बाएं गणेश विराजमान थे। एक लुढ़का दीप उसके सामने था। दीप की जली हुई बाती चिपकी हुई थी। एक पॉलीथिन में दो भिंडी व एक फफूंद लगा हुआ कुछ था। जो फफूंद के कारण समझ नहीं आ रहा था। भिंडी पर फफूंद का कोई प्रभाव नहीं था। वह ज्यादा बासी प्रतीत भी नहीं हो रही थी। एक पेंट का डिब्बा जिसके बाहर ढेर सारा पेंट लगा हुआ था। अलमारी के नीचे के खाने में कपड़े की रस्सी से बनी हुई जापानी स्टाइल की छोटी टोकरी थी। इसमें भूत वाला क्या है? मन में प्रश्न उभरा।

क्या मैं डरपोक किस्म का इंसान हूँ?



यह सामान किसी कर्मचारी का होगा। मन में प्रश्न-उत्तर का क्रम चलने लगा।

नहीं, मैं डरपोक नहीं हूँ। मान लिया यह सामान किसी कर्मचारी का है। मुझे ठीक से नींद क्यों नहीं आई? कुछ बात जरूर है। वरना आज रात भी मुझे गहरी नींद नहीं आती। मन का द्वंद किसी निर्णय पर नहीं पहुँचने दे रहा था।

शंका का समाधान हुए बिना चैन कैसे मिलता? इसलिए फैसला किया यहाँ के किसी कर्मचारी से पूछना चाहिए। शंका के समाधान के लिए डाइट की बिल्डिंग जो मुझसे दस-पन्द्रह कदम के फासले पर थी, मैं वहाँ चला आया। वहाँ लक्ष्मी नाम की कर्मचारी सफाई कर रही थी। उसकी उम्र पचास-पचपन के आसपास लग रही थी। मैंने अभिवादन करने के बाद पूछा, “आप यहाँ कब से काम कर रही हैं?”

“मैं यहाँ तेरह वर्ष से हूँ।” लक्ष्मी ने उत्तर दिया।

मैं सीधा अपने विषय पर आ गया। “आपके सामने यहाँ कोई अनहोनी हुई है?”

“आपको कुछ दिखा?” उत्तर देने के स्थान पर उसने मुझसे प्रश्न किया।

“नहीं मेरा एक साथी कह रहा था यहाँ किसी लड़की ने आत्महत्या की थी।”

“हाँ, ऊपर के कमरे में रहती थी।”

“ऊपर के कमरे में।” मैंने दोहराया।

“हाँ, अब वह कमरा बंद रहता है। हम तो न्यू ए फिरा ज्यां

प्रत्युत्तर

भारती शर्मा

पिछले कई दिनों से वो उसे दीवानों की तरह ढूँढ़ रहा था। उसका चेहरा उसकी, आँखें उसकी नज़रों के सामने घूमती रहती थी। उसे एक पल के लिए भी चैन नहीं मिल रहा था, ऐसा लग रहा था मानो वो आँखें उसे घूर रही हैं, उस पर हँस रही हैं। वो अंदर ही अंदर घुल रहा था। 'साब' शब्द उसके कानों को चीरने लगा था। बस एक बार वो कहीं मिल जाए तो वो अपने दिल का बोझ हल्का कर ले।

रोज़ इसी उम्मीद के साथ रवि ऑफिस ऑटो से ही जाने लगा कि शायद वो कहीं मिल जाए और वो उसे गले लगाकर माफ़ी माँग सके।

आज ऑफिस से लौटने पर रीमा ने रवि से पूछ ही लिया कि आखिर आजकल तुम ऑटो से क्यों जाने लगे हो? खोये-खोये.से रहते हो। आखिर हुआ क्या है? बताओ प्लीज़! रीमा ने जैसे उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया हो। वो निढाल-सा सोफे पर बैठ गया। उसने रीमा को बताया कि तीन दिन पहले जब वो ऑफिस जा रहा था तब रास्ते में एक ऑटो वाला गलत साइड काटते हुए मेरी मोटरसाइकिल से टकरा गया। मेरे डांटने पर वो बहस करने लगा। मैंने आवेश में आकर उस ऑटो वाले को थप्पड़ मार दिया। वो मेरे इस व्यवहार से अवाक रह गया। उसकी आँख से पानी बहने लगा। उस क्षण उसके चेहरे पर मेरे प्रति जो भाव थे, वो चेहरा, वो भाव मैं भुला नहीं पा रहा हूँ। मेरे द्वारा किए गए अपमान को पी कर प्रत्युत्तर में उसने मुझसे सिर्फ़ इतना कहा कि 'साब' अब तो आपका गुस्सा शांत हो गया होगा, नहीं हुआ हो तो और मार लीजिए। रीमा वो तो इतना कह कर चला गया लेकिन मैं आज तक वहीं खड़ा हूँ, हिल नहीं पाया हूँ वहाँ से।

सम्पर्क : 'अभिनव प्रयास' स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कॉलोनी
नगला डालचन्द, क़ारसी बायपास, अलीगढ़-202001

सा। हमनै तो कुछ ना दिखता।' उसने आगे बताते हुए कहा, "पहले यहाँ का माहौल बहुत अच्छा था। बच्चे और स्टाफ सभी अच्छे थे। दिन में लड़के और लड़कियां आपस में खेलते थे। अब ऐसा नहीं है। एक सुबह सभी लड़कियां तैयार हो गईं लेकिन एक कमरे का दरवाज़ा अंदर से बंद था। खिड़की से देखा, वे लटकी हुई थी।"

"वे, क्या एक से ज्यादा ने फांसी खाई थी?" मैंने पूछा।

"हाँ, दोनों एक ही कमरे में रहती थी। दोनों बहुत अच्छी थी।"

"अच्छों को ही भगवान अपने पास बुलाता है।" मैंने कहा, "बुरों से उसे भी डर लगता है।"

"आप यह क्यों पूछ रहे हैं?" लक्ष्मी ने पौछ लगाते हुए पूछा।

मुझे यहाँ ठीक से नींद नहीं आ रही थी। तब एक साथी ने कहा, "तू उस कमरे में तो...। अच्छा छोड़ो, यह बताओ इस कोने वाले कमरे में सिलाई मशीन किसकी है?"

"मैडम की है। वह लड़कियों को सिखा देती हैं।"

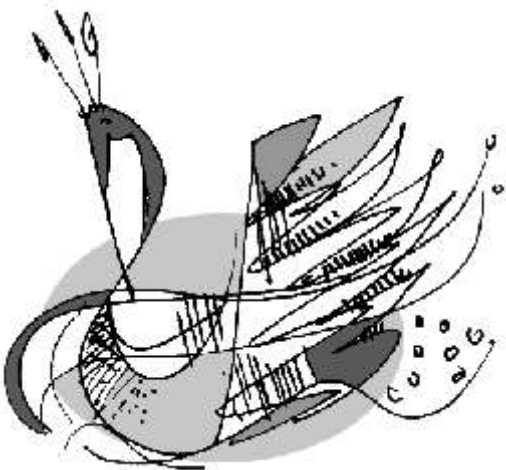
"ओह!" मैं मुस्कुरा उठा। शायद ढ़ुद पर कटाक्ष कर रहा था।

तभी लक्ष्मी बोली, "भय का ही भूत होता है। हम उसके बारे में जितना सोचते हैं, वह उतना ताकतवर बन जाता है और हर वस्तु भूत बनने लगती है।"

"ठीक कहती हैं आप। माफ़ करना मैंने आपका समय खराब किया।" कहते हुए मैं वहाँ से आ गया।

एक रात मैंने भूत के साए में बिताई है। इसमें कोई शक नहीं। अब फैसला आप करें, भूत होता है या नहीं।

सम्पर्क : फतेहकुंज, एच.पी. पेट्रोल पंप के सामने,
कॉट रोड, भिवानी-127021; मोबाईल : 94857 21000





अंकुश्री

कब आरेंगे पापा ?

वि

मला तालाब पर नहाने गई थी। उसकी सहेली पूजा भी उसके साथ थी। घर से लाए कपड़े साफ करके दोनों नहाना शुरू करने ही वाली थी कि विमला की नढ़र बगल के शैवाल के अंदर घूमती छोटी-छोटी मछलियों पर पड़ी। उन्हीं में एक लाल मछली भी थी। उसने मछलियां विमला को दिखलाई। पानी में पैर रखते मछलियां भाग कर कुछ दूर जाकर तैरने लगीं। मगर लाल वाली मछली दिखाई नहीं दी। तालाब के उस पार पुरुष लोग नहा रहे थे। विमला ने देखा कि पुरुषों के बीच सुधीर भी नहा रहा है। सुधीर हट्टा-कट्टा जवान था। उसको देख कर पूजा ने विमला से कहा, “कितनी देर से नहा रहा है!”

सुधीर मजदूरी करता था। कई बार वह विमला के पति अजय के साथ भी काम कर चुका था। इस सिलसिले में वह घर भी आया-जाया करता था। अजय पिछले तीन साल से महानगर में काम करने लगा था। वह आसपास के गांवों के मजदूर साथियों संतू, प्रकाश और मोती के साथ वहां काम करता था। एक तरह का काम था, इसलिए वे साथ ही रहते और खाते-पीते थे। चारों में अच्छी दोस्ती हो गई थी।

विमला के तालाब से नहा कर आते दोनों बच्चे उसके पास दौड़ कर आ गए। विमला को एक बेटा और एक बेटी थी। बेटा का नाम गोलू था, जो सात वर्ष का था। वह गांव के विद्यालय में दूसरी कक्षा में पढ़ता था। बेटी का नाम बेबी था, जो चार वर्ष की थी। वह अपनी मां के साथ ए-बी-सी-डी की

किताब लेकर बैठती थी और एपल, बनाना, कैट, डॉग देख कर पहचानने लगी थी। उसे विमला पढ़ाती ही थी, गोलू भी उसकी किताब उलट-पुलट करा देते थे। पूजा आती थी तो वह भी उसके साथ खेलती थी और कुछ-कुछ पढ़ा देती थी। विमला एक अनुशासित महिला थी और संयमित जीवन जीती थी। वह इस बात में विश्वास करती थी कि जीवन में नियम और अनुशासन का होना बहुत जरूरी है। वह गांव की महिलाओं के साथ इधर-उधर बैठ कर गप्प-सराका करना पसंद नहीं करती थी। उसकी देखा-देखी गांव की कुछ बहुएं भी इधर-उधर जाने और फालतू बातचीत करने से परहेज करने लगी थीं। विमला घरेलू कामों में व्यस्त रहती थी। दोनों बच्चे भी मां का कहा मानते थे और आपस में प्रेमपूर्वक रहते हुए खेलते-पढ़ते थे।

पूजा अपने मन की बात विमला से नहीं छिपाती थी, बता देती थी। विमला भी मन-बाहर की बातें पूजा को बताती रहती थी। एक दिन उसने विमला को बताया कि सुधीर उसे बहुत अच्छा लगता है। सुधीर गांव में एक मेहनती और ईमानदार युवक के रूप में जाना जाता था। वह गांव के बड़े-बुजुर्गों की कद्र करता था। गांव वाले भी उसे सही मान देते थे। मौका-कुमौका किसी के काम में हाथ बंटाने के लिये वह तैयार रहता था। मगर एक बात थी कि परोपकार में वह अपने काम को नहीं भूलता था। अपने काम के प्रति वह बहुत गंभीर था। जिस काम को हाथ में लेता था, उसे पूरा किये बिना दम नहीं लेता था। गांव के दूसरे कई युवक भी काम करने शहर जाते थे, लेकिन अधिकतर के बारे में यह शिकायत थी कि वे बीच में ही काम

छोड़ कर आ जाते हैं और बुलाने पर जल्दी जाते नहीं हैं।

करीब चार साल पहले की बात है। एक दिन सुधीर अजय के घर आया हुआ था। अजय ने ही उसे बुलाया था। उन दिनों अजय अपने गांव के निकटवर्ती शहर में ही काम करता था। उसका काम दिवार पर पुटी-पेंट करना था। उसे एक हेल्पर की जरूरत थी, इसीलिए सुधीर को बुलाया था। विमला दोनों को खाना खिलाई थी। सुधीर अक्सर आता और अजय के साथ काम पर जाता था।

अजय जहां काम कर रहा था, वह चार मंजिला मकान था। पुटी-पेंट का काम चल ही रहा था कि बढ़ई मिस्त्री का काम शुरू हो गया था। दरवाजा-खिड़की के चौखट पहले ही लग चुके थे। उनके किंवाड़ झुलाना और कब-बोर्ड आदि लगाना था। प्रकाश मुख्य बढ़ई था, संतू और मोती उसके हेल्पर थे। प्रकाश बड़े-बड़े भवनों में काम कर चुका था। पहले वह बेंगलुरु में काम करता था। बहन की शादी में गांव आया था। जाने की सोच ही रहा था कि बरसात शुरू हो जाने से वह खेती-बाड़ी में उलझ गया। इस बीच वह अपने गांव के निकट शहर में एक मकान में काम शुरू कर दिया था। उस मकान का काम पूरा करने के बाद उसे वापस बेंगलुरु जाना था। उसने अजय से कहा था, “तुम भी चलो, वहां बहुत काम है। सबसे बड़ी बात है कि वहां काम की पहचान है, इसलिये मजदूरी अच्छी मिल जाती है।”

इस तरह अजय बेंगलुरु में काम करने लगा था। एक साल वहां काम करके आया था तो गांव वाले अपने घर की मरम्मत कराया था। गोलू का स्कूल में नाम लिखवा कर ड्रेस-किताब सब खरीद दिया था। महीने भर वह गांव में रहा था। इतने दिनों में ही उसका घर कमासूत का घर दिखने लगा था। वह फिर अपने काम पर चला गया। कुछ दिनों में ही उसे वहां पहचान मिल गई थी। इसलिये कमाई भी अच्छी हो रही थी। जाते समय वह सुधीर को भी साथ लेते गया था।

मेहनत रंग दिखाती है। अजय के साथ भी यही हुआ। मेहनत और लगन के कारण उसे बहुत काम मिलने लगा। हाथ में इतना काम हो गया कि उसको फुर्सत नहीं मिल पाती थी। अगले माह, अगले सप्ताह करते-करते दो साल बीत गया, वह घर नहीं जा पा रहा था। सुधीर के साथ ही उसने दो और हेल्पर रख लिए थे। सुधीर गांव जा रहा था तो उसके हाथ कुछ रुपये

और कपड़े विमला को भेजवा दिये थे। विमला से मोबाइल पर उसकी बात होती रहती थी। फिर भी सुधीर से उसने संवाद भेजवा दिया था कि जिस मकान का काम हाथ में लिया है, होली में उसमें गृह प्रवेश होना है। उसने यह संवाद भी भिजवाया था कि वहां होली का कोई माहौल नहीं रहता है, लेकिन दिन तय हो गया है तो काम पूरा करके देना होगा। सुधीर ने भी बताया कि होली में उस घर में गृह प्रवेश हो जाने के बाद अजय घर आएगा।

होली में मालिक का गृह प्रवेश तो हो गया, मगर काम पूरा नहीं हो पाया। गृह प्रवेश के बाद भी दस दिनों का काम बाकी रह गया था। काम पूरा करके अजय को घर जाना था। उसने रेलगाड़ी में 12 अप्रैल का रिजर्वेशन भी करवा लिया था। घर जाने के लिये वह बच्चों के कपड़े आदि भी खरीद लिया था। तभी एक महामारी फैलने के हल्ला ने जोर पकड़ लिया।

चीन से शुरू हुई महामारी का हल्ला देखते-देखते चारों तरफ फैल गया। महामारी का फैलाव इतनी तेजी से हुआ कि किसी को समझ में नहीं आया कि क्या किया जाए और उससे कैसे बचा जाए। देश-विदेश सभी जगह लोग परेशान हो गये। मास्क पहनने और एक-दूसरे से दूर रहने की हितायदें दी जा रही थीं। अपने देश में होली बीतते-बीतते लोग तेजी से उस बीमारी की चपेट में आने लगे। उस विश्वव्यापी महामारी का नाम ‘कोरोना’ पड़ा। एक प्रकार के वायरस से फैलने वाली वह महामारी इतनी तेजी से फैली कि लोग हक्का-बक्का रह गए। ऐसी बीमारी लोगों ने पहली बार देखी थी। इसलिये इसके कारण,

लक्षण और निवारण की सही जानकारी किसी को नहीं मिल पा रही थी। विश्वव्यापी महामारी से सभी परेशान थे। दफ्तर, दुकान, प्रतिष्ठान, होटल, शिक्षण संस्थान, पूजा-स्थल, उद्यान आदि सभी बंद कर दिए गए। लॉकडाउन लगा दिया गया। इससे लोगों के आने-जाने पर प्रतिबंध लग गया। जो जहां थे, वहीं ठहर गए। पाबंदिया कड़ी थीं, प्रशासन सख्त था। लोग बीमार पड़ रहे थे, अस्पताल जा रहे थे। फेफड़े में संक्रमण हो रहा था और बीमार होने के बाद लोगों को सांस लेने में तकलीफ हो रही थी। ऑक्सीजन की उपलब्धता सर्वसुलभ नहीं थी। आक्सीजन नहीं मिलने से लोग मर रहे थे। श्मशान घाटों पर लाशों का जमावड़ा लगा था। छूत की बीमारी थी, इसलिए लोग मृतक को छूने से परहेज कर रहे थे और सभी

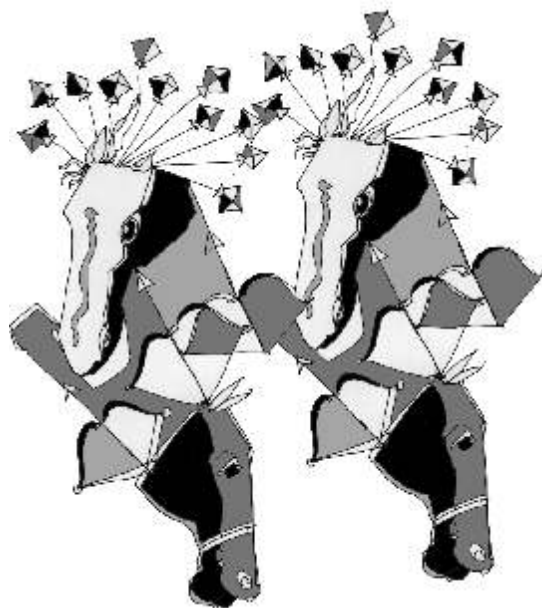


मृतकों और जीवितों से दूरी बनाए हुए थे। कुछ लाशें बिना जलाए नदियों में फेंकी जा रही थीं। संक्रमण के डर से बीमारों से रिश्तेदार भी दूर रह रहे थे। घर में बीमार पड़ने वालों से लोग अलग-थलग रह कर दूरी से ही दवा-भोजन-पानी आदि दे रहे थे। संक्रमण के डर से रोगी और एक-दूसरे से भी दूर-दूर रहना परिवार-समाज की मजबूरी हो गई थी। बीमारी के नजदीक आते रिश्ते दूर होते जा रहे थे। कमोबेश सभी जगह की यही स्थिति थी।

परिवार के साथ घर में रहने वालों का जीवन भी आसान नहीं था। मगर घर-परिवार से बाहर रहने वालों का जीवन तो बिल्कुल दतरहोगा था। अजय अपने साथियों के साथ वह दो-तीन दिनों तक लुक-छिप कर काम किया। उसके बाद काम पूरी तरह बंद करा दिया गया था। काम बंद होते मजदूरी मिलनी भी बंद हो गई। ऐसी बात सिर्फ उन्हीं लोगों के साथ नहीं थी। होटल, दुकान, परिवहन, फेरी आदि से जुड़े सभी दैनिक वेतनभोगियों के साथ यही बात थी। सबकी हालत खराब थी। खुदरा नियोजकों ने अपने दैनिक या साप्ताहिक कर्मियों को काम पर आने से अनिश्चित काल के लिये मना कर दिया था। लॉकडाउन में काम बंद हो जाने से सभी परेशान थे। मजदूरों को बैठ कर कोई वेतन नहीं देना चाहता था।

हजारों किलोमीटर दूर से आकर काम करने वालों के सामने ज़िंदगी और मौत का सवाल खड़ा हो गया था। कुछ लोग किराये में रहते थे। उनको किराये और खाने का पैसा कहाँ से आएगा? संकट में अपने घर-परिवार की याद भी सताने लगती है। लोग वापस अपने घर जाने की बात सोचने लगे। लेकिन रेल, सड़क, वायु और जल सभी मार्ग बंद थे। खाने-पीने के आवश्यक सामानों के परिवहन पर तो छूट थी, परंतु अन्य सारा परिवहन बंद था। ऐसे में कुछ लोग हिम्मत करके पैदल ही अपने घर के लिए चल दिए। अजय अपने घर से करीब दो हजार किलोमीटर दूर था। तीन सौ से चार सौ घंटे की यात्रा थी। साथ का सामान, साथियों का साथ। जिसे जहाँ मौका मिला, छोटे-छोटे समूह बना कर चल दिया।

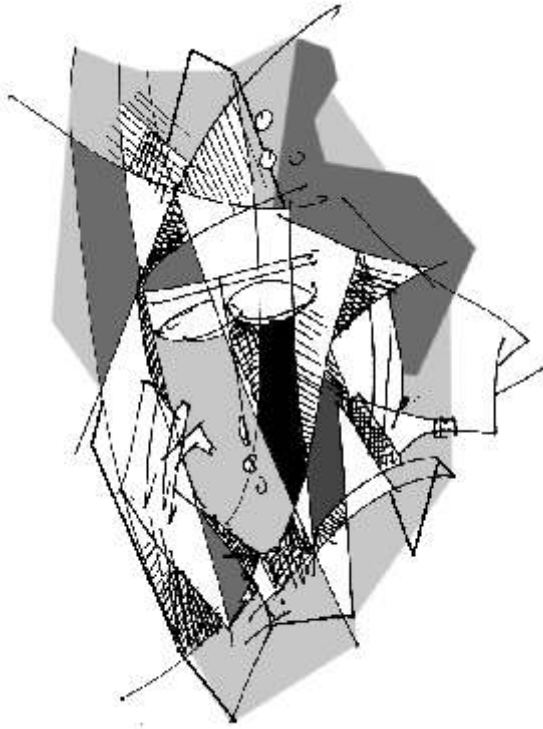
लॉकडाउन में कर्फ्यू का माहौल था। घर से बाहर निकलने पर पूरी तरह रोक थी। सड़क पर चलने वालों को देखते पुलिस खदेड़ देती थी और उन पर डंडे भी बरसाती थी। लोग बीमारी की तरह पुलिस से भी खौप खाए हुए थे। दो-चार पुलिस ऐसे भी थे, जिन पर विभाग का प्रभाव नहीं पड़ा था और वे खुल कर आम जन को मदद कर रहे थे। घर से बाहर रहने वाले अनेक लोग अपने तथाकथित घर से निकल कर कुछ दूर



आ गए थे, संकटों को झेलते हुए अपने घर की ओर बढ़ने के प्रयास में लगे हुए थे। हजारों मजदूर सैकड़ों किलोमीटर दूर अपने घर के लिये बढ़े जा रहे थे। पुलिस को देख कर, उनका डंडा खा-खाकर लोग इधर-उधर छिप जा रहे थे और मौका मिलते फिर थोड़ी दूर चल लेते थे। ऊपर से सूरज की गर्मी थी और नीचे तपती हुई सड़क। चप्पल-जूता पहन कर चलने की आदत के अभाववश और कुछ लोगों के चप्पल-जूते टूट जाने के कारण अधिकतर मजदूर नंगे पांव ही चल रहे थे। वे जहाँ से गुजरते थे, वहाँ तमाशबीन तो बहुत थे, मददगार बहुत कम।

अजय चारों साथियों के साथ घर से भले दो हजार किलोमीटर दूर था, परंतु हर पांच-सात किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद उन सभी को अपना घर नजदीक होता दिख रहा था। वे लोग चल रहे थे और चले जा रहे थे। तभी सामने का दृश्य देख कर उनके पैर ठिठक गए। सड़क के किनारे एक ट्रक लगा हुआ था और कुछ मजदूर उस पर चढ़ रहे थे। पता चला कि ट्रक उत्तर की ओर जा रहा है। ट्रक कहाँ तक जाएगा यह किसी को पता नहीं था। उस ट्रक में पहले से पंद्रह-बीस मजदूर सवार हो चुके थे। अजय भी अपने साथियों के साथ उस पर सवार हो गया। ट्रक ड्राइवर ने प्रति मजदूर दो-दो हजार रुपये लेकर ट्रक चला दिया। चलने से पहले ट्रक को पूरी तरह ढंक दिया गया, ताकि पता नहीं चल सके कि अंदर आदमी है। खाद्य एवं चिकित्सा सामग्री की आढ़ में परिवहन करना था।

ट्रक काफी तेजी से जा रहा था। सभी मजदूरों को लग रहा था कि वे अब अपने घर पहुँच जाएंगे। सड़क उबर-खाबर थी और ड्राइवर तेजी से ट्रक चला रहा था। कई बार ट्रक की चाल



अनियंत्रित हो जाती थी। उसमें सवार सभी लोग डरे-सहमे हुए थे। ड्राइवर था कि ट्रक को चला नहीं, भगा रहा था। ट्रक को इस तरह भगाने से लग रहा था कि वह कभी भी पलट सकता है। उसमें सवार मजदूर पहले तो खड़े थे, मगर बाद में बैठते गए। अंदर काफी धूल और गंदगी थी। मगर किसी को उस पर बैठने में कोई झिझक नहीं हुई। सभी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे, इसलिए उन्हें दूसरी किसी बाधा के बारे में सोचने का मौका नहीं था। त्रिपाल ढंका होने के कारण बाहर का दृश्य नहीं दिख रहा था। कोई-कोई त्रिपाल में फांका करके बाहर झांक ले रहा था। हालांकि बाहर झांकने से कोई लाभ नहीं था। मार्ग की पहचान किसी को नहीं थी। बस एक ही संतोष का सहारा था कि वे आगे बढ़ रहे हैं।

चलते-चलते ट्रक अचानक रुक गया। अजय ने झांक कर देखा, एक बागीचा था। घने पेड़ों से घिरे झुरमुट की ओट में छिपा कर ट्रक खड़ा कर ड्राइवर नीचे उतरा और खेतों से होता हुआ कहीं चला गया। काफी देर तक ड्राइवर के आने की प्रतीक्षा में लोग खेत की ओर ताकते रहे। मगर वह नहीं आया। अजय अपने साथियों के साथ ट्रक से उतर गया। ट्रक से करीब सौ किलोमीटर की दूरी ही तय हो पाई थी। उसके बाद वे फिर पैदल चलने लगे। सबकी मंजिलें तय थी, मगर रास्ता किसी को पता नहीं था। अजय ने गिनती कर ली थी। ट्रक में कुल बाइस

मजदूर सवार हुए थे। अपने साथियों के साथ वह आगे बढ़ गया।

सुबह हो गई थी। गांव में लोग इधर-उधर जाने लगे थे। एक आदमी सड़क किनारे से लोटा लिए हुए उठा तो अजय के साथी जोबा ने उससे वहां की जानकारी लेनी चाही। उस आदमी ने बताया कि वहां से 11 किलोमीटर की दूरी पर रेलवे स्टेशन है। यह भी पता चला कि कुछ स्पेशल ट्रेनें आ-जा रही हैं। गांव और खेत होते हुए सभी रेलवे स्टेशन के लिए चल दिए।

गांव के कुंआ पर लोग नहा रहे थे। उनसे बाल्टी लेकर सबों ने पानी पीआ। अजय भी भर पेट पानी पी लिया। पेट में पानी जाने से नस-नस में ठंडक का संचार हो गया और देह में स्फूर्ति आ गई। वहां से चलने के बाद वे सीधे रेलवे स्टेशन पर ही रुके। स्टेशन पर पहुंचने पर मन को बहुत शांति मिली। उन्हें लगा कि अब वे घर पहुंच जाएंगे। आशा से शरीर में शक्ति का संचार हो जाता है। स्टेशन पर बहुत कम कर्मचारी थे। 'पूछताछ' काउंटर पर कोई नहीं था। वहां पहले से भी कुछ मजदूर बैठे थे, जो इधर-उधर से आए हुए थे। इधर-उधर से पूछताछ करने पर पता चला कि एक रेलगाड़ी तड़के सुबह गुजरी है और दूसरी शाम को गुजरेगी। मगर सुबह वाली गाड़ी यहां नहीं रुकी थी और शाम वाली भी नहीं रुकेगी। इसलिये रेलगाड़ी का इंतजार करना बेकार था। सभी ने फिर से पैदल बढ़ने का निर्णय किया।

रेलवे स्टेशन से सड़क काफी दूर थी। लॉकडाउन में कहीं जाने-आने की भी मनाही थी। ऐसे में सड़क पर खुल कर चलना कानूनन अपराध हो गया था। सड़क मार्ग पर चलते हुए लोग देख लेंगे। इसलिए तय किया गया कि रेलवे लाइन के रास्ते चला जाए। कहीं रुकना किसी को पसंद नहीं था। शाम ढलने वाली थी। सभी रेल की पटरियों के रास्ते चल पड़े। छिपछिपा कर चलने के कारण पटरियों के रास्ते गुजरने वालों की संख्या किसी को पता नहीं थी। अजय को लगा कि उसके साथ चलने वालों की संख्या पचास से कम नहीं है। आगे कितने लोग गए या पीछे कितने लोग आएंगे, इसका अनुमान किसी को नहीं था। वे चल रहे थे और चलते जा रहे थे। घर एक ऐसी मंजिल था, जहां पहुंचने के लिये सभी बेचैन थे। सभी चले जा रहे थे। चलने के अलावे उन्हें कुछ नहीं दिख रहा था।

खराब रास्ता, लंबी दूरी, लगातार चलना, सबके पैरों में दर्द हो रहा था। उनका गला सूख रहा था। एक, दो, तीन, चार की संख्या में लोग रेल की पटरी से होकर चले जा रहे थे। पटरियों पर चलने वाले लंबी दूरी तक बिखरे हुए थे। दो मजदूर आगे-आगे चल रहे थे। वे यकायक रेल की पटरियों पर लेट गए। रात कब की हो चुकी थी। अंधकार का साम्राज्य पूरी तरह

छा चुका था। तभी अचानक पूरब की ओर से आधा चांद निकल आया। थोड़ी देर में सभी लोग एक-दूसरे को दूर-दूर बिखरे हुए दिखने लगे। आगे जा रहे दोनों मजदूरों को लेटे हुए देख कर दूसरे मजदूरों की इच्छा भी थोड़ी देर रुकने की होने लगी। देखा-देखी सभी पटरियों के बीच लेटते गए। उनका सिर पटरियों पर था, जो उन्हें तकिया का आनंद दे रही थी। लेटने भर की देर थी। नींद ने सबको अपनी आगोश में ले लिया।

अजय अपने चारों साथियों के साथ भीड़ के बीचोबीच चल रहा था। उन्होंने तय किया कि थोड़ी देर और चलेंगे। वे चलते रह गए। थोड़ी-दूर बढ़ने के बाद उन्हें पटरियों के किनारे ट्राली कटान मिला। पटरियों के निरीक्षण के दौरान रेलगाड़ी के आने पर निरीक्षण वाली ट्राली को पटरियों से हटा कर इसी जगह पर लगा दिया जाता है। उसके घेरान पर सिर रख कर पांचों लेट गए। लेटते ही वे लोग नींद की आगोश में आ गए। सबकी नींद इतनी गहरी थी कि उन्हें यह पता नहीं था वे कहाँ सोए हुए हैं।

सूरज की धूप जब चेहरे पर पड़ी तो अजय के एक साथी की नींद टूट गई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसने देखा कि कुछ लोग पटरियों की ओर पीछे की दिशा में दौड़े जा रहे हैं। वे आसपास के ग्रामीण थे। उसने अपने साथियों को उठा दिया। पता चला कि पटरियों पर सोए लोगों की ट्रेन से कटने से मृत्यु हो गई है। रात में कोई एक्सप्रेस ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से जा रही थी। पटरियों पर सोए हुए मजदूरों को रौंदते-काटते हुए वह आगे बढ़ गई थी। कम से कम छत्तीस मजदूर कट कर मर गए थे। घटना करीब आधा किलोमीटर पहले की थी। पांचों ने सोचा कि वहां जाकर तमाशा देखने के अलावा वे कुछ नहीं कर सकेंगे। सिर्फ तमाशा देखने के लिये आधा किलोमीटर पीछे जाना उन्हें गंवारा नहीं था। वे लोग आगे बढ़ गए।

छत्तीस मजदूरों का पटरियों पर कट कर मर जाना एक महत्वपूर्ण समाचार बन गया था। दोपहर होते-होते बात सारी जगह फैल गई। अजय के बेटा गोलू ने अपनी मां को बताया, “मम्मी ! कल रात ट्रेन से कट कर छत्तीस मजदूर मर गए हैं। वे सभी रेल की पटरियों पर सोए हुए थे और ट्रेन उन्हें कुचलती-काटती आगे निकल गई।”

“तुम्हें यह बात कैसे पता चली ?” विमला का चेहरा स्याह पड़ गया था।

“रमुआ ने टी.वी. पर देखा है। पूरे गांव में इसी बात पर चर्चा हो रही है।” गोलू ने आगे तुरंत कहा, “मगर पापा के लिये हमें चिंतित नहीं होना चाहिए, वे रेल से नहीं, सड़क मार्ग से आ रहे हैं।” उसकी आवाज में जीत का बोध था। पूजा ने गांव में



जब यह बात सुनी तो वह भी दौड़ी-दौड़ी विमला के पास आ गई थी।

“लेकिन पटरियों से होकर आने वाल मजदूर भी सड़क मार्ग से ही आ रहे थे। वे रेल की पटरियों पर ही सड़क की तरह चलते हुए आ रहे थे, रेलगाड़ी में बैठ कर नहीं।” यह गोलू के दोस्त रमुआ की आवाज थी। उसे पता था कि उसके पापा पैदल घर आ रहे हैं।

रेल की पटरियों पर छत्तीस लोगों के मरने का समाचार सुन कर सबकी हालत खराब थी। सुबह से कई बार फोन लगाने का प्रयास किया गया था, मगर लग नहीं पाया था। स्वीच ऑफ बता रहा था। किससे पूछे, क्या करे, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। तभी विमला के मोबाइल की घंटी बजने लगी। बिना नाम का नंबर था। अजय ने किसी दूसरे के मोबाइल से फोन किया था, “- - - हमलोग पटरी से हट कर सोए थे, इसीलिए बच गए। अभी हमलोग एक गांव से गुजर रहे हैं। गांव वालों ने दोपहर में हम पांचों को चार-चार रोटियां और गुड़ खाने के लिये दिया था। रोटियां बहुत मुलायम और स्वादिष्ट थीं। खाकर मन तृप्त हो गया। भोजन की ऐसी तृप्ति कई दिनों के बाद हुई है। उसके पहले हमने खेत के एक कुएं से पानी पिया था और पेड़ से तोड़ कर बेर खाए थे। बेर तोड़ने में गांव के बच्चों ने भी मदद की थी। बेर खाते हुए बढ़ ही रहे थे कि गांव में पहुंचने पर रोटी मिल गई थी।”

“घर पहुंचने में अभी और कितनी देर लगेगी ?”

“इसका अनुमान करना संभव नहीं है।” अजय ने बताया, “पता चला है कि कुछ दूरी पर एक नदी बहती है, जिसे पार करने पर हमलोग काफी आगे निकल जाएंगे – – – ।” फोन आ जाने से विमला की सांस में सांस आई। चिंता और बेचैनी से उसकी हालत खराब थी। बच्चे भी समाचार मिल जाने से खुश हो गए थे।

गांव में भी कोरोना की कहर से तबाही शुरू हो गई थी। लोगों में चर्चा बनी हुई थी कि यह बीमारी शहर जाने-आने वालों के माध्यम से गांव में आई है। कई लोग बीमार थे। कुछ बीमारों को जीवन से मुक्ति भी मिल गई थी। बुजुर्गों के साथ-साथ युवाओं को भी यह बीमारी अपनी चपेट में ले रही थी। रोगियों से अस्पताल भरा था और समाचारों से अखबार। टी. वी. पर महामारी के प्रकोप और प्रभाव के समाचार प्रमुखता से दिखाए जा रहे थे। घर वापस आने वाले मजदूरों की परेशानियां भी समाचारों का हिस्सा बनी हुई थीं।

अजय अपने साथियों के साथ गांव किनारे की नदी पहुंच गया। नदी गहरी थी और पाट चौड़ा था। आसपास कहीं नाव भी नहीं दिख रही थी। पास के खेत में दो बांस दिखाई दिया। अपने कपड़े और सामानों को बांस में बांध कर वे उसी का सहारा लिए नदी में उतर गए। तुरंत कमर तक पानी आ गया। थोड़ी दूर चलने पर पानी छाती तक पहुंच गया। मगर उसके बाद पानी कम होना शुरू हो गया। उस पार जाने के बाद सबके चेहरे पर जीत की खुशी दिखने लगी। मगर उनके भाग्य में खुश होना नहीं लिखा था। नदी पार करने के बाद वे कुछ ही दूर बढ़े थे कि कुछ सिपाही घुमते हुए दिखाई दिए। वे उन्हें आगे बढ़ने से रोकने लगे और खदेड़ते हुए वापस नदी पार करने के लिये बाध्य कर दिये। इस क्रम में दो साथियों को डंडा भी खाना पड़ा।

रात होने लगी थी। वे नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़ते जा रहे थे। कुछ दूर जाने के बाद रास्ता पथरीला हो गया। नदी में भी चट्टानें दिख रही थीं। उन चट्टानों से होकर वे नदी पार कर अगले जिला में घुस गए। आगे काली सड़क मिलने पर वे बढ़ने लगे। एक माइल पोस्ट से पता चला कि वे घर से अभी चौर सौ किलोमीटर दूर हैं।

एक बंद लाइन होटल के पास तीन ट्रक लगे हुए थे। एक ट्रक आगे-पीछे कर रहा था। पूछने पर पता चला कि वह उसी दिशा में जाएगा। भाड़ा पूछने पर ड्राइवर ने कहा, “मुझे भाड़ा नहीं चाहिए, जो बुझाए तेल का खर्चा दे देना।” ट्रक आगे बढ़ा तो चार और मजदूर दिख गए। वे भी पैर घिसटते हुए चले जा रहे थे। ड्राइवर ने ट्रक रोक कर उन्हें भी उठा लिया। रात के समय सड़क पूरी तरह सन्नाटा दिख रही थी। ट्रक तेजी से बढ़ा जा रहा

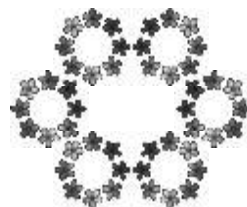
था। ट्रक चलने के कुछ देर बाद ही उसमें बैठे मजदूर लेट गए और वे तुरंत नींद की आगोश में समा गए।

ट्रक तेजी से चला जा रहा था कि एक अप्रत्याशित घटना घट गई। वह ट्रक किसी दूसरे ट्रक से टकड़ा गया। टक्कर इतनी तेज थी कि अगले ट्रक को धक्का मारते हुए वह सड़क की दाहिनी ओर चालीस फीट गहरे खड्डे में गिर गया। कोरोना की घातक शांति में ट्रक में सवार सभी लोग आजीवन शांत हो गए थे। वातावरण में व्याप्त शांति में इस अशांतिपूर्ण समाचार की जानकारी लोगों को बहुत शांत गति से मिली। विलंब से ही सही, मगर मीडिया वालों ने अपने कर्तव्य का निर्वहण करते हुए लोगों तक समाचार पहुंचा दिया। ट्रक ड्राइवर और खलासी सहित ग्यारह मजदूरों की मौत की खबर तीसरे दिन के समाचार पत्रों की सूखी बन गई। दुर्घटनाओं और मौतों की बोलबाला में लोगों के नाम कम, उनकी संख्या का समाचार अधिक छप रहा था। महामारी में एक-दूसरे से लोगों का परहेज इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग दूर से ही किसी तरह मृतकों की गिनती मात्र कर पा रहे थे। महामारी और दुर्घटनाओं में आदमी सिर्फ संख्या बन कर रह गया था।

दिन बीता, सप्ताह बीता और महीना भी बीत गया। कई महीने बीत गए। सभी मजदूरों की तरह अजय की भी प्रतीक्षा हो रही थी। छोटी बेबी अबोध जरूर थी, मगर उसे इतना बोध था कि पापा नहीं आ रहे हैं। वह अक्सर दरवाजे पर खड़ी होकर गांव का रास्ता निहारा करती थी। जब कोई आदमी बैग या सामान लिए उधर से आता हुआ दिखता था तो उसे लगता था कि पापा आ गए। मगर उस आदमी के चले जाने पर वह उदास हो जाती थी। वह अपने गोलू भैया से पूछी, “पापा कब आएंगे?” विमला भी वहीं बैठी पूजा से बात कर रही थी। तभी गोलू ने कहा, “मम्मी, तुम कहती थी कि पापा कोरोना खत्म होने पर आ जाएंगे।” विमला के पास कोई उत्तर नहीं था। वह सिर्फ गोलू और बेबी को देखे जा रहे थे। गोलू ने अगले कुछ दिनों में कहा, “कोरोना खत्म हुए तो एक साल हो गया, मगर पापा नहीं आए? कब आएंगे पापा?”

सम्पर्क : 8, प्रेस कॉलोनी, सिंदरौल, नामकुम

रांची-834 010 (झारखण्ड) मोबाईल : 8809972549





प्रियंका पाठक

बदलते रिश्ते

सु

रेश बाबू जब गांव जाते तो टोले वाले उन्हें शहरी बाबू कहते थे। यह संबोधन कुछ देर के लिए उन्हें भीड़ से अलग करता था। लिहाजा उनका सीना गर्व से चौड़ा हो जाता। दिन लोगों को शहर के किस्से सुनाने में बीत जाता। गांव की चौपाल पर सुरेश बाबू इकलौते होते जो साफ-सुथरे कपड़े, चप्पल पहने होते थे। अपनी जुल्फों को बहुत ही करीने से सजाकर रखते। गांव आने पर लड़के उन्हें घेर लेते। कोई चाचा कहता, कोई बड़का बाबूजी तो कोई भैया। गांव के हिसाब से जो रिश्ता बनता उनसे जोड़ लेता।

सब उनके सामने मांग रख देते कि “शहर से आए हैं तो कुछ खर्चा-वर्चा करिए।” वह भी खुशी-खुशी खर्च करते थे। कोई कंजूसी नहीं करते। यह उनकी नौकरी के शुरुआती दिन थे।

सुनहरी भौजी के लिए सुरेश बाबू बबुआ जी थे। मौका मिलते ही भौजी उनसे चुहलबाजी करने से बाज नहीं आती, “काहो शहरी बाबू बड़ा जुल्फी काढ़ के घुमत बाड़अ। आवअ तनी कनई-माटी हो जाए।”

डर के मारे कि भौजी कपड़े खराब कर देंगी सुरेश बाबू भाग खड़े होते।

सुरेश बाबू का दिन तो बड़े आराम से कट जाता, लेकिन रात उनसे काटे नहीं कटती। मच्छर, गर्मी, उमस उनसे सही नहीं जाती। शहर में वह बिजली, पंखे, एसी के आदि हो चुके थे। लिहाजा गांव में एक-दो दिन ही रुकते और भागकर शहर आ

जाते। पत्नी और बच्चों को गांव नहीं ले जाते। कहते-

“वहां बड़ी दिक्कत है। तुम लोग एडजस्ट नहीं कर पाओगे।”

सुरेश बाबू का गांव जाने का सिलसिला अब कम पड़ गया। या कह सकते हैं कि थम सा गया और एक साल से तो लगभग खत्म ही हो गया।

नौकरी करते हुए उन्होंने शहर में भी एक बहुत बड़ा सा मकान बना लिया था। नौकरी में इतना व्यस्त रहते कि दिन कैसे बीत जाता पता ही नहीं चलता। सुबह बच्चों को स्कूल छोड़ना, फिर तैयार होकर दफ्तर जाना, देर शाम लौटना। यही उनकी दिनचर्या हो गई थी।

समय के साथ बच्चे बड़े हुए। उन्होंने भी नौकरी के लिए दूसरे शहर का रास्ता धर लिया। सुरेश बाबू और उनकी पत्नी शीला घर पर रह गए। शाम को जब दो पल सुकून के मिलते तो पति-पत्नी आपस में बात करते कि आगे क्या होगा? बच्चे तो चले गए? हम क्या करेंगे?

शीला कहती- “चार महीने में तो आप भी रिटायर हो जाएंगे।”

सुरेश बाबू दिलासा देते, “कोनो दिक्कत नहीं है। घर है। पेंशन भी मिलेगी। दो ही परानी हैं तो सब मजे में चल जाएगा।”

आखिर एक दिन वह घड़ी भी आ गई जब सुरेश बाबू रिटायर हो गए। रिटायरमेंट के बाद वह खुद को खाली-खाली महसूस करने लगे। न कोई बात करने वाला, न कोई दर्द बांटने

वाला। उनके जीवन में नीरसता आ गई। वह बहुत ही उदास और अकेलापन महसूस करने लगे थे। अब उन्हें अपनी गांव की बहुत याद आती। गांव की तरह न कोई चाचा भैया कहने वाला था न कोई उनसे कुछ सामान खरीदने के लिए ज़िद करने वाला।

एक दिन वह घर से निकले तो पास के सड़क की पुलिया पर जा बैठे। गाड़ियां वहां से सायं-सायं पास कर रही थीं। सोचने लगे, “बड़ी तेज़ रफ़्तार है शहर की। हर कोई भाग रहा है। यहां कोई से कोई को मतलब नहीं, एक-दूसरे की फ़िक्र नहीं, बात करने तक की फ़ुर्सत नहीं। सब अपने में मगन है।”

सुरेश बाबू ने खाली समय बिताने का यही रास्ता निकाला। रोज़ पुलिया पर बैठते, शहर की रफ़्तार निहारते। एक दिन ऐसे ही पुलिया पर बैठे-बैठे सोचने लगे, “शहर से बढ़िया तो अपना गांव है।”

सुरेश बाबू ख़्वाबों की दुनिया में गोता लगाने लगे। बचपन से ज़वानी की रील दिमाग में घूमने लगी। सोमरू काका उनके चरवाहा थे। इनको बहुत मानते थे। हमेशा कंधे पर लेकर गांव, बाग-बगीचे और खेत घुमाते रहते थे। एक दिन गाय चरा कर लौटे तो हाथ में मोर पंख लिए थे।

बोले, “बबुआ इसको किताब में रख लीजिएगा, विद्या माई मेहरबान होंगी।”

सुरेश बाबू जोर-जोर से हंसने लगे, “कहीं ऐसा भी होता है क्या कि मोर पंख से विद्या ज़्यादा आती है।”

फिर दिमाग रोपनी वाले खेत की ओर चला गया। सुरेश बाबू सोचने लगे “कैसे बचपन में रोपनी करने गई औरतों की झुंड ने उन्हें एक बार घेरकर नंगा कर दिया था और ख़ूब कनई मिट्टी पोत दी थी।”

जब वो रोते हुए घर पहुंचे तो माई ने रोपनी करने वाली औरतों को कितना भला-बुरा कहा था और उन्हें भी दो-चार चपत लगाई थी। कुआं पर पानी भरने के दौरान फुलेशरी से कैसे उनकी बतकूचन हुई थी। फुलेशरी ने गुस्से में कैसे एक गगरा पानी उन पर उड़ेल दिया था और कैसे वह उसका कपड़ा लेकर भाग गए थे। बहुत बड़ी पंचायत हुई थी इस मामले को लेकर।

सुरेश बाबू ने शीला से कहा, “शहर का मकान छोड़कर गांव चलते हैं, वही रहेंगे। कम से कम बोलने-बतियाने वाले तो मिलेंगे।” लेकिन पत्नी राजी नहीं हुई।

सुरेश बाबू एक दिन ताव में आ गए और बोले “तुम्हें नहीं जाना है तो न जाओ मैं तो ज़रूर जाऊंगा गांव।”

अकेले गांव निकल लिए लेकिन वहां बिजली-बत्ती,



मच्छर वाली समस्या फिर सामने खड़ी हो गई। इससे बड़ी समस्या यह थी कि गांव में अब उन्हें कोई पहचानने के लिए तैयार नहीं था। सप्ताह भर बाद शहर लौट आए।

पत्नी ने ताना दिया “का हुआ? काहे भाग आए?”

सुरेश बाबू के पास कोई जवाब नहीं था। बेचारे चुपचाप रहने लगे और अंदर ही अंदर घुटते रहते। एक दिन उनके बचपन के मित्र रमाशंकर बाबू उनसे मिलने आए। उनकी इस हालत को देखकर वह बोले-

“क्या हुआ सुरेश इतना गुमसुम क्यों रहने लगे? सारे बच्चे अच्छे नौकरी में लग गए हैं। सबका शादी-ब्याह करके निश्चिंत हो गए हो। तुम्हें भी अच्छी-खासी पेंशन मिल रही है, अपना मकान बन ही गया है। अब किस बात की चिंता खाए जा रही है तुम्हें?”....

“मुझसे अपनी मन की बात करो, इससे तुम्हारा मन हल्का हो जाएगा?”

सुरेश बाबू ने कहा, “यार क्या बताऊं तुम्हें। मैं ना घर का रहा ना घाट का। नौकरी जब तक की तब तक शहर से ही सिमटा रहा, गांव की ओर कभी मुड़कर नहीं देखा। जब रिटायर हुआ तब गांव की याद आई। लेकिन जब वहां गया तो वहां कोई अपना नहीं दिखा, कोई अपना नहीं रहा। गांव वाले कहते हैं जब कमाते थे तब तो ताकते नहीं थे अब क्या लेने आए हो गांव? अपना हक-हिस्सा लेना है तो ले लो और हम लोगों से कोई अपनापन की उम्मीद ना पालना।”



डॉ. श्रीगोपाल नारसन

टिफिन

को

रोना अपने यौवन पर था। लॉकडाउन का सत्राटा दूर तक पसरा था। सब लोग घरों में कैद होकर कोरोना से दूरी बनाए हुए थे, फिर भी जो कोरोना के आगोश में पहुंच गए उनमें अधिकांश घर में ही एक कमरे के अंदर आइसोलेशन में थे। जिनकी सांस उखड़ रही थी उन्हें अस्पताल ले जाया जा रहा था। बैड कम और मरीज ज्यादा होने के कारण कुछ अस्पताल के अंदर तो कुछ अस्पताल से बाहर ठीक होकर परिजनों के बीच लौटने या फिर महा प्रयाण पर जाने का इंतजार कर रहे थे। लेकिन मुजफ्फरनगर की कोठी नम्बर चार सौ, जो एक पॉश कॉलोनी की सबसे बेस्ट लोकेशन में है, के अंदर की हलचल पिछले बीस दिनों से गायब थी। अब तो बदबू भी कोठी से आने लगी थी।

पड़ौसियों का भी उस बदबू के कारण रहना नामुमकिन हो गया था। लग रहा था कोठी के अंदर रह रहे बुजुर्ग दम्पति अब शायद ही इस दुनिया में हों। लेकिन करे तो क्या करे? किसी की भी कोठी के अंदर जाकर हकीकत जानने की हिम्मत नहीं हो रही थी। पुलिस को भी सूचना दी गई। गश्ती पुलिस आई भी, लेकिन सड़क पर डंडा फटकार कर और पड़ौसियों को नसीहत देकर चली गई। जब तुम इतनी बदबू में नहीं जा सकते, हमसे ही उम्मीद क्यों करते हो। आखिर हम भी बाल बच्चे वाले हैं। कोरोना पुलिस को न हो सकता हो, ऐसा भी नहीं है। हा, जब कोई अंदर घुसने वाला मिल जाए और कोई अनहोनी की बात हो तो हमें खबर कर देना, यह कहकर पुलिस

चली गई। समय ज्यों की त्यों बनी हुई थी। मजबूर होकर किसी ने शहर में कोरोना रोगियों की मदद कर रहे होनहार युवक प्रवीण को बुलवाया। प्रवीण ने भी कोठी में अंदर घुसने का प्रयास किया तो बदबू के भभकारे से उसके कदम ठहर गए। लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी और कहीं से पीपीई किट व छोटे वाला आक्सीजन सिलेंडर लेकर आया और उसे पहनकर आक्सीजन सिलेंडर नाक पर लगाकर अंदर घुस गया। अंदर का नजारा बढ़ा ही विभत्स और डरावना था। जगह जगह मल मूत्र फैला था, वही एक बुजुर्ग फर्श पर बेहोश पड़ा था, लेकिन उसकी सांसे चल रही थी, पास ही एक बुजुर्ग महिला उकड़ू बैठी जड़वत सी हो गई थी। लग रहा था, शायद मर गई, लेकिन मर गई होती तो लुढ़क गई होती, यूँ बैठी न रहती। प्रवीण उन्हें इसी हालत में छोड़कर कोठी से बाहर आ गया। उसने अंदर का आंखों देखा हाल पड़ौसियों को ब्यान भी किया और मदद के लिए दो युवक देने की अपील पड़ौसियों से की, जिसके लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

आखिर प्रवीण ने दो सफाई कर्मियों को बुलवाया, वे कोठी के अंदर भी गए लेकिन गंदगी देख उन्होंने भी हाथ खड़े कर दिए। जब जायज पैसों व जज्बात से बात नहीं बनी तो सफाई कर्मियों को उक्त कोठी में सफाई के लिए पांच पांच हजार रुपये की ऑफर दी गई। जिस पर पैसा जीत गया और उन्होंने प्रवीण के साथ मिलकर पांच घण्टे की कठिन मेहनत के बाद कोठी को साफ किया। साथ ही बुजुर्ग दम्पति को भी नहला कर इस लायक कर दिया कि उन्हें डॉक्टर को दिखाया

जा सके। डॉक्टर ने बुजुर्ग दम्पति की चिकित्सीय जांच की तो पाया उन्हें कोरोना नहीं था, केवल बुखार था। कई दिनों तक कुछ न खा पाने के कारण वे मरणासन्न से हो गए थे, उनका एकाकीपन व असहाय होने के कारण मौके पर ही मल मूत्र की विवशता ने उन्हें विक्षिप्त सा बना दिया था। लगभग एक हफ्ते के इलाज व भरपूर खाना समय से प्रवीण द्वारा उपलब्ध कराते रहने से बुजुर्ग दम्पति सामान्य होने लगे थे। एक दिन बुजुर्ग दम्पति ने प्रवीण से उसके घर ले चलने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन अभी उनमें कमजोरी बाकी थी, इसीलिए वह लगभग पन्द्रह दिन तक उन्हें आज या कल अपने घर ले जाने का बहाना कर टालता रहा।

अंततः एक दिन जब बुजुर्ग दम्पति पूरी तरह से ठीक हो गए, प्रवीण ने उनसे कहा कि मैं कार लेकर आता हूँ, आज आपको अपने घर लेकर चलूंगा। इस पर बुजुर्ग दम्पति बहुत खुश हुए और बोले, 'आपको कार लाने की आवश्यकता नहीं है, ये लो चाबी? चार कारे गैराजों में खड़ी है। आज से ये सभी कार आपकी है, जहाँ चाहो, ले जाओ। प्रवीण ने गैराज में खड़ी गाड़ियाँ देखी तो दंग रह गया। एक से एक महंगी कार थी, उनके पास। तभी बुजुर्ग उठा और तिजोरी में से कई बैंकों की चैक बुक लेकर आया। प्रवीण से बोला, 'इन चैक बुको के सारे चैक ले लो और खातों में जमा सारी रकम निकाल लो। अब यह सब हमारे किसी काम के नहीं है। तीन फैक्ट्रियाँ हैं हमारे नाम, उन्हें भी अपने नाम करा लो। एक बेटा है वह विदेश में है। उसने कई महीनों से हमारी ख़बर नहीं ली। प्रवीण, आप हमारी न मदद करते तो हम दोनों की अभी तक मौत हो गई होती। हम तो इंतजार ही कर रहे थे, उस नरक में मौत आने का। लेकिन मौत से पहले तुम आ गए।' थोड़ी देर तक बुजुर्ग दम्पति शांत मन से ख्यालो में खोए रहे। फिर तन्द्रा तोड़ते हुए बोले, 'प्रवीण इस दौलत को लेने से मना मत करना, लेकिन इसके बदले हमें भी कुछ चाहिए? अचानक बुजुर्ग दम्पति के मुख से दौलत के बदले सौदेबाड़ी करते देख प्रवीण मुस्कराया, बोला, मुझे तो आपकी कोई धन दौलत नहीं चाहिए लेकिन आप मुझसे क्या चाहते हो, यह बता दो? बुजुर्ग दम्पति एक साथ बोल उठा, 'सिर्फ दोनो समय का टिफिन।' यह सुनते ही प्रवीण की आँखों में आंसू आ गए। उसने जिंदगी भर उन्हें टिफिन देने का वायदा किया। बुजुर्ग दम्पति ने भी प्रवीण के एनजीओ को चारों गाड़ियाँ व दस करोड़ रुपये दान कर दिए ताकि टिफिन, दवाइयाँ और मदद किसी के लिए भी बंद न हो।

सम्पर्क : पोस्ट बॉक्स 81, रुड़की (उत्तराखंड)
मोबाईल : 9997809955

लघुकथा

जामुन

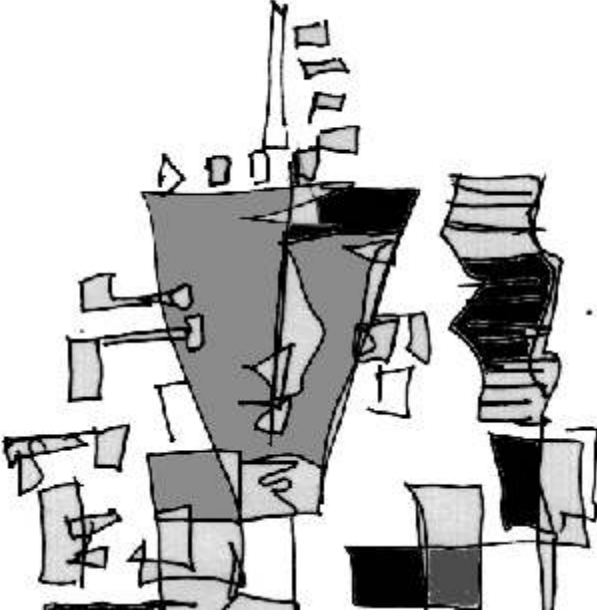
भारती शर्मा

गाँव जाने की मुझे कितनी खुशी थी ये सिर्फ मैं जानता था। कितनी ही यादें जुड़ी थीं गाँव से मेरी। यादें बचपन की, यादें बड़ी माँ और बड़े पापा की और यादें जामुन के पेड़ की।

मुझे याद है हमारे गाँव में घर के आँगन में एक जामुन का पेड़ था, जो आज भी है, जिसे बड़े पापा ने बड़े प्यार से बोया था। मैं उस घर में दो लोगों के प्यार की छाँव में पला। एक तो बड़ी माँ और दूसरा जामुन का पेड़। और जामुन के पेड़ और बड़ी माँ की स्थिति भी उस घर में समान ही थी, तिरस्कृत। क्योंकि न ही बड़ी माँ अभी तक उस घर को संतान दे पायीं थी और न ही जामुन का पेड़ फल दे पाया था। दादी माँ बड़ी माँ को नीचा दिखाने का कोई मौका न छोड़तीं और दादा जी जामुन के पेड़ को कटवाने की ताक में रहते।

लेकिन उस दिन के बाद जो हुआ उसे चमत्कार कहूँ या संजोग.. ये आज तक तय नहीं कर पाया हूँ। हमेशा की तरह दादा जी जामुन के पेड़ को अनावश्यक बता रहे थे और उसे काटने की योजना बना रहे थे, पेड़ कटने की बात सुन कर हड़कंप-सा मच गया था घर में। बड़ी माँ सहमी-सी खड़ी थीं। शोर सुन कर बड़े पापा बाहर आए और बोले, "क्यूँ शोर मचा रखा है, अरे फल नहीं दे रहा तो क्या हुआ, घर आँगन में छाया तो देता है, कितने पक्षियों, गिलहरियों का घर है इस पर। सुबह जब कोयल बोलती है तो कितना मधुर वातावरण लगता है। शुद्ध हवा देता है और क्या चाहते हैं आप? बड़े पापा भावुक होकर पेड़ से लिपट गए और मैं बड़ी माँ से। खुल कर कभी बड़ी माँ की पैरवी नहीं कर पाए थे बड़े पापा, लेकिन आज जामुन की पैरवी कर उन्होंने एक पंथ दो काज कर दिए थे। उस दिन के बाद से किसी ने भी जामुन के पेड़ और बड़ी माँ दोनों का तिरस्कार नहीं किया। और चमत्कार या संजोग ये कि उसी वर्ष बड़ी माँ ने एक पुत्र को जन्म दिया और उधर जामुन के पेड़ पर लदकर जामुन आए।

सम्पर्क : 'अभिनव प्रयास' स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कॉलोनी
नगला डालचन्द, क़ारसी बायपास, अलीगढ़-202001



संगीता बैनीवाल



नाम

प

वित्र! बोल बेटा तेरा के नाम सै?’ दादी लाड-लाडां म्हं पड़पोतै नै उसका नाम याद करावै थी। ढाई साल कै पवित्र नै दादी कै लाड-प्यार अर गोदी तै मतलब था। पवित्र नैं नाम नुम तैं कोये लेणा-देणा ए

नहीं था।

पर दादी नै अपना पोता, अर उसका नाम दोनु बोहत आच्छे लागैं थे। पोतै कै नाम पै जमा लदू हो री थी। के सुथरा नाम टोहया सै बहुड़िया नै। दादी बहू की दिमागदारी पै पुरी तरियां चित्त थी। दादी कै अपणें टबरै के नाम बामण ए धर कै जा रया था। जिंसा बी नाम उस बामण कै दिमाग म्हं आया या न्यूं कह ल्यो बामण नैं ठीक लाग्या धर दिया। पर बहु नैं बी कहै दिया बामण तैं, “पंडित जी आप नाम का पहला अक्षर बता दें हम उसी अक्षर पर अपनी पसंद का नाम रख लेंगे।”

बामण नै आखर बताया उस आखर पै यो नाम टोहया। सुथरा लाग्या तै सारे घरक्यां नैं मंजूरी दे दी। गंगा जल ज्युं पवित्र। दादी बी मन-मन म्हं बेरां ए ना कितणी बर बोल-बोल कै देख्या करदी अक देखूं मनै बोलणा आवै सै अक् नी। हां हां बोलणा आवै सै “प... वि... त्र पवित्र.... पवित्र सिंह....।” ईब तै दादी इतणी फरबट हो गी थी अक् खुद पवित्र नै उसका नाम याद करावै।

“बोल बेटा पवित्र- प...वि....त्र।” दादी सहज-सहज नाम के टुकड़े करकै सिखावण लागी।

पवित्र दादी की गोदी म्हं बैठ्या उसकी औढणी पै अपना खिलौणां कार चलांदा रया। पवित्र कानी तैं कोय जवाब नी। पवित्र नै जरूरत ऐ नी समझी जवाब देंण की। पवित्र सिंह दादी की औढणी पै सिलवटां म्हं गाडी न्यूं चलावै था जणूं रेगिस्तान की लहरियेदार रेत पै चलाया करैं। कदे ऊंचाई पै जोर दे कै चढावै कदे स्पीड तैं नीचै उतारै।

“तु! सुण पहल्यां मेरी बात सुण फेर खेलिये।”

“बोल पवित्र प...वि...त्र।” दादी नै फेर कहाया।

पवित्र बोल्या तो कुछ नहीं दादी कानी देख कै खिलखिला कै न्यूं हाँस्या जणु किसे न गुदगुदी करी हो।

दादी नै एक बै फेर कोशिश करी। समझाणा चाहया। कोशिश बेकार।

ईब मास्टर अर स्टूडेंट बदल गे

“दादी आपता ते नाम है।” पवित्र नै दादी तैं सवाल बुझा।

पवित्र का सुआल सुण कै दादी की पूरी देही म्हं झनझनाहट सी लौटगी। दादी सकपका सी गी। दादी थोरै कोय जवाब नी।

कोय जवाब देंदी उसतैं पहल्यां पवित्र बोल्या -

“मैं बताऊँ।....दादी ! दादी है आपता नाम ।”

पवित्र की या बात तो दादी के कानों में बढ़िये कोनी। दादी तै उसकै पहले सुआल का जबाब टोवै थी या अपणै आप नै टोहवै थी ? खैर कुछ बी हो उस टैम दादी का हिसाब-किताब उक-चुक था।

पवित्र सिंह खेलदा-खेलदा दादी की गोदी में ऐ सो गया। दादी न्यूँ ऐ अंदाजा लगाण लागी अक कम-तै-कम सत्तर-बहत्तर दिवाली तै खा ऐ राखी होंगी मन्त्रै। चलो मान लिया अक छोटी-मोटी बात भूलण लाग गी। फेर बी के अपणा नाम बी.... ? इस्सा के चाला पाट्या ? दादी गहरे बिचारों के समुंद्र में यादों के लहरियै में गोते मारै थी।

दादी नै आज इस बात का बहोत घणा अचंबा था अक मेरा के नाम सै ? तीन साल का पढ़पोता पुछै सै।

“कोय न कोय तो जरूर रहया होगा मेरा बी नाम। न्यूँ थोड़ी होया करै अक किसे का कोये नाम ए ना हो। मेरी मां की कोनी पार बसी होगी ! फेर... बी ! मेरी दादी नै तो जरूर धरया होगा कोय न कोय नाम तो।”

“नाम तो बालक जब पाएं चालण जोगा हो जाया करदा तै घर कुणबै, गली आले आपे धर दिया करदे। बालक का रंग-रूप, चाल-ढाल देख कै।”

पवित्र सिंह उसकै पोतै का छोरा यानि चौथी पीढ़ी था। पीहर में तो बेटी की नाम तैं पिछाण हो सै। सासरै में आ के फलाणै की बहूदिया। बालक हों ऐ पाछै बालकां की मां। उसमै बी जै किसे लुगाई के छोरे-छोरे सै तो बहूँ छोरे का नाम फैमस हो सै “दलीप की मां” जिसकै छोरी हों तै बड़्डी छोरी का नाम सबकी जवान पै हो सै “भतेरी की मां”। पोते होगे जब उस बालक की दादी। ईब पढ़पोते होएं पाछै बड़्डी दादी। बालकां का बाबु बी कदै नाम नी ले अपणी लुगाई का। दलीप रै ! भतेरी ऐ ! इतणे में लुगाई समझ ज्यां सैं अक किसनै बुलावै सै।

“जनक की बहू..... !”

“जनक की बहू..... !”

“औए.. ! तन्नै सुण्या कोनी ... ? कितणे बोल दे लिये।” अपणी सास के बोल दादी नै आज बी याद सैं।

“मन्नै बोलो थे के.. ?” दादी नै पुछ्या

(नयी बहू यानि दादी इस नये सम्बोधन से अनभिज्ञ तो नहीं थी पर याद रखने मे सहज भी नहीं थी।)

“हाँ तन्नै ए बोलूँ थी।”

“जनक के तनै ए तै ब्याह कै ल्याए सां।”

उस दिन तैं या बुलार दादी के समझ में आगी अक् ईब यो ए मेरा नाम सै, पहचान सै।

दादी वापस वर्तमान में आई तै देख्या पवित्र गहरी नींद में था।

“चौखा सो गया। बहोत सुआल करण लाग्या।” दादी नै मन-मन में सोच्या।

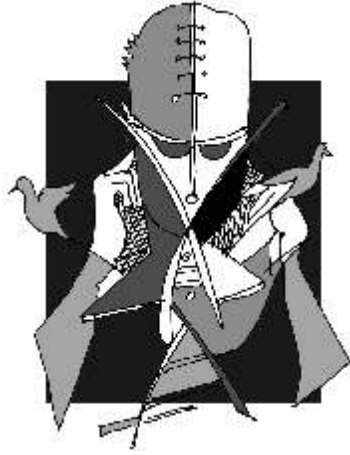
(दादी ने अपनी पोते की बहु को आवाज लगाई ताकि पवित्र को बिस्तर पर सुला दे।)

“अनील की बहू.... ?” (ये शब्द दादी के गले में अटकै रह गै। बाहर ए नी लिकड़े.... !)

दादी नै जोर तैं गला साफ करया। फेर हटकै बोल मारया “सरिता ऐ....। ऐ..बेटी सरिता....। भाई नैं पलंग पै सुआ दे। मेरी गोद में ए सो गया सै।”

सम्पर्क : 204, जीएचएस- 4, सेक्टर- 27
पंचकूला (हरियाणा), मोबाईल : 9417011424





बलदेव राज भारतीय

सिफारिश ऊपरवाले की

ए

क बेरोजगार व्यक्ति के लिए रोजगार एक महत्वपूर्ण चीज है। जब तक उसे रोजगार नहीं मिल जाता उसे दिन-रात नौकरी, इंटरव्यू इत्यादि के सपने आते रहते हैं। मैं भी एक बेरोजगार व्यक्ति हूँ। पिछले दिनों मैंने भी एक सरकारी नौकरी के लिए आवेदन दिया था। जिसके फलस्वरूप मुझे साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। जैसा कि आप सभी जानते हैं साक्षात्कार तो महज एक औपचारिकता होती है। सब कुछ तो 'पहुँच' और 'पैसे' पर निर्भर करता है। राजनीतिक क्षेत्र में कोई विशेष ज्ञान पहचान न होने के कारण मेरी कोई 'पहुँच' नहीं थी, और घर की हालत सुदामा के घर से भी बुरी थी। इसलिए जेब में धेला भी नहीं था। अतः यह संभव नहीं था कि मैं किसी की मुट्ठी गर्म कर नौकरी प्राप्त कर सकूँ।

सोचा भगवान के साथ मेरी अच्छी बनती है। वह तो सृष्टि के पालनकर्ता हैं। क्यों ना उनसे कहूँ कि वे मंत्री जी से मेरी सिफारिश कर दें। मुझे यह बात जंच गई और मैंने वैसा ही किया। सपने में भगवान श्री हरि विष्णु जी महाराज ने मुझे दर्शन दिए और कहा, 'वत्स! घबराओ नहीं। मैं मंत्री जी से तुम्हारी सिफारिश अवश्य करूँगा। तुम्हें नौकरी अवश्य मिलेगी।' ऐसा कहकर भगवान श्री हरि विष्णु जी महाराज अंतर्ध्यान हो गए। देखने में वे बिल्कुल वैसे ही लग रहे थे जैसे आजकल टीवी पर चलने वाले धार्मिक कार्यक्रमों में 'विष्णु जी' नजर आते हैं।

थोड़ी देर बाद भगवान श्री हरि विष्णु जी मंत्री जी की कोठी के सामने प्रकट हुए। वह प्रवेश करने ही वाले थे कि द्वार

पर खड़े द्वारपाल ने संकेत से उन्हें बुला लिया। 'क्या चक्कर है? बिना पूछे किधर जा रहे हो?'

'जी, मुझे मंत्री जी से मिलना है।' भगवान जी ने उत्तर दिया।

'मंत्री जी से बाद में मिल लेना। पहले मुझसे तो मिल लो। अपना 'अपॉइंटमेंट लेटर' दिखलाइए, 'मेटल डिटेक्टर' से गुजरिए फिर अंदर जाइए।'

भगवान श्री हरि विष्णु जी मुस्कान बिखेरते हुए बोले, 'वत्स! मैं भगवान हूँ। मुझे किसी 'अपवाइंटमेंट लेटर' की आवश्यकता नहीं। मैं सभी जगह अपनी इच्छा से आ जा सकता हूँ।'

'देखिए, यहां पर आने वाला हर व्यक्ति अपने आप को भगवान बताता है। परंतु मुझे तो अपनी ड्यूटी निभानी है। क्या पता किस वेश में शैतान प्रवेश कर जाए। सुरक्षा की दृष्टि से जांच तो जरूरी है ना।'

'मैं तुम्हारी कर्तव्यनिष्ठा से प्रसन्न हूँ, वत्स। यह लो 'अपॉइंटमेंट लेटर' और यह रही 'मेटल डिटेक्टर जांच।' भगवान जी ने सौ सौ के दो नोट उसकी और बढ़ाते हुए कहा।

द्वारपाल ने नोटों के लिए अपने कुर्ते की ऊपर वाली जेब आगे कर दी।

'इसकी क्या जरूरत थी? आप तो सचमुच के भगवान लगते हैं।' जैसे औपचारिक शब्दों के साथ उसने भगवान श्री हरि विष्णु जी को अंदर जाने की अनुमति दे दी।

जहां द्वारपाल के व्यवहार से वे खिन्न हुए वहां उन्हें इस

बात की प्रसन्नता भी हुई कि इस जगत में उनकी धर्मपत्नी 'लक्ष्मी जी' की बहुत प्रतिष्ठा है। यहां के लोग उन्हें अपने चमड़े के हाथों से छूना भी पाप समझते हैं, तथा सीधे ही अपनी जेबों में शरण देते हैं।.....और तो और लक्ष्मी जी के पूजन के बिना यहां कोई कार्य संभव ही नहीं। थोड़ी देर में ही वे मंत्री जी के अतिथि कक्ष में पहुंच गए। वहां तक पहुंचने के लिए स्वयं उन्हें तीन बार लक्ष्मी जी की सहायता लेनी पड़ी। एक बार तो उन्हें ऐसा लगा कि लक्ष्मी जी के कारण उनका अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। काश उन्होंने भी पृथ्वी-लोक वासियों के तरह दहेज में लक्ष्मी जी के सारे अधिकार अपने लिए मांग लिए होते तो आज संसार में लक्ष्मी जी की बजाय उनकी प्रतिष्ठा होती। फिर सोचा- चलो जो हो रहा है, अच्छा हो रहा है। है तो घर की ही बात। जैसा लक्ष्मी जी का सम्मान वैसा मेरा सम्मान।

इतने में मंत्री जी अपने अतिथि कक्ष में पधारे।

‘हां, तो कहिए कौन हैं आप? कहां से आए हैं?’

‘जी, मैं भगवान श्री हरि विष्णु हूं। मैं क्षीरसागर से सीधे यहां आया हूं।’

‘यह तो मेरे चुनाव क्षेत्र में नहीं पड़ता।’

‘जी हां, यह आपके चुनाव क्षेत्र में नहीं पड़ता।’

‘कहिए क्या काम है आपको?’ मंत्री जी ने पूछा।

‘अभी कुछ दिन पहले आपके विभाग के अंतर्गत कुछ पदों के लिए साक्षात्कार हुआ था।’

‘आपने ठीक कहा, ऐसा हुआ था।’

‘उनमें से किसी एक पद पर आप मेरे एक भक्त का चयन कर दें तो आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।’

देखिए, वैसे तो हमारे यहां काम बहुत ही ईमानदारी से होता है। कोई हेरा फेरी नहीं होती। फिर भी आप उसका नाम, पता और रोल नंबर बता दें।’

‘जी, उसका नाम पता और अनुक्रमांक इस पर्ची पर लिखा है, लीजिए।’ भगवान श्री हरि विष्णु जी ने एक पर्ची मंत्री जी को पकड़ाते हुए कहा।

‘देखिए, भगवान हरिप्रसाद जी.... यही नाम बताया था आपने अपना।’

‘जी नहीं, मेरा नाम श्री हरि विष्णु है।’

‘हां, हरि विष्णु जी! आपका काम हो जाएगा। परंतु उसके लिए दस लाख लगेंगे। मैं तो बहुत ईमानदार हूं किसी से एक रुपया लेकर राजी नहीं। परंतु ऊपर वाले बिना ‘लक्ष्मी जी’ के काम ही नहीं करते। ईमानदारी से बांट कर खाते हैं।’ मंत्री जी ने अपना हाथ खुजलाते हुए कहा।

एक पल के लिए तो भगवान श्री हरि विष्णु जी को लगा कि ‘ऊपर वाले’ शब्द उनके लिए प्रयोग किया गया और उन पर

भ्रष्टाचार का सरासर झूठा आरोप लगाया जा रहा है। परंतु ध्यान में आया कि इस भूलोक पर तो उन से भी ऊपर वाले रहते हैं।

‘मंत्री जी! मेरे भक्त के पास तो एक भी फूटी कौड़ी नहीं है। वह बेचारा दस लाख कहां से लाएगा?’ भगवान जी ने मंत्री जी से कहा।

‘तो फिर आप यहां क्यों आए हैं? अपनी तरह उसे भी किसी सीरियल में भगवान बनाना चाहिए। आजकल तो हेर चैनल पर बहुत से धार्मिक सीरियल चल रहे हैं।’

‘जी, मैं सीरियल वाला भगवान नहीं। मैं तो सचमुच का भगवान हूं।’

‘तुम और भगवान! तुम्हारे जैसे बहुरूपिये तो हिंदुस्तान की गलियों में भीख मांगते नजर आते हैं। अगर तुम सचमुच के भगवान होते तो यामरेप इसी किसी भी सफारिशल कर आते? अब जाइए, नहीं तो रिश्त देने के जुर्म में अंदर करवा दूंगा। आ जाते हैं भिखारी यहां भगवान बन के।’ मंत्री जी ने भगवान को धक्का देते हुए कहा।

भगवान जी ठोकर खाकर गिर पड़े और मेरी चीख निकल गई। आंख खुली तो देखा न वहां भगवान श्री हरि विष्णु जी थे और न ही मंत्री जी। यह एक स्वप्न था। मैं चारपाई से नीचे लुढ़क गया था जिसके कारण मेरी चीख निकल गई थी।

सम्पर्क : गांव- असगरपुर, डाक- सालेहपुर, तहसील- जगाधरी, जिला यमुनानगर- 133204 (हरियाणा)





मूल : डॉ. दाशरथि भूयाँ
अनुवाद : डॉ. भगवान त्रिपाठी



दुर्घटना

भा

रत भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण संस्था के लिए नियुक्ति-पत्र पाकर मैं हावड़ा से ब्लैक डाइमंड एक्सप्रेस से धनबाद जिले के कतरास शहर के पास योगीडिह सर्वेक्षण कैम्प में कार्य आरम्भ करने के लिये जा रहा था। उस ट्रेन के हमारे डिब्बे में सत्रह नम्बर से लेकर चौबीस नम्बर सीट तक दो बच्चों को मिलाकर हम कुल दस यात्री थे। झरोखे के उस पार झारखण्ड के प्राकृतिक सौंदर्य, घने जंगल में पहाड़ के ऊपर से छलाँग लगाते हुए झरने के दृश्य, हवा के झोंकों से जंगल के ऊँचे शाल और पियासाल के वृक्षों के सिर हिलाने के दृश्य, कुहासे से घिरे पर्वतों के मनोरम दृश्य से मैं अत्यंत मंत्रमुग्ध हो उठा था। जंगल में दिखाई पड़ रही थी ढेर सारी कोयले की खदान। पहाड़ों की चोटियों पर कहीं चर्च तो कहीं मन्दिर शोभायमान थे। हम सब भिन्न-भिन्न विषयों पर आपस में बातचीत कर रहे थे। किंतु मेरे सामने बैठे हुए यात्री किसी से बातचीत किये बिना चुपचाप बैठे थे। उनके चेहरे से लगर हाथ कि कवे उ त्तर-पूर्वभ रतके म णिपुर, मेघालय, मिजोराम या नागालैंड के निवासी होंगे। वे शायद खुद को औरों से भिन्न और अलग समझते थे। समझने का कारण यह था कि सभी यात्री बीच-बीच में आँखें फाड़-फाड़ कर अलग-अलग हाव-भाव से उन्हें देख रहे थे। संयोग से उस तेलुगु यात्री की छोटी लड़की ने उस गोरे चिपटी नाक वाले व्यक्ति की ओर अंगुली दिखाते हुए अपने पिता से पूछा- “पिताजी! देखिए चीन का एक आदमी हमारे साथ सफर कर रहा है। आप उस

दिन मुझे पढ़ाते समय कह रहे थे न कि चीन हमारा शत्रु है। उन्होंनेक ोरोनाम हामारीक ोस रेि वक्षम ेफै लायाहै। इ स आदमी से हमें कोई खतरा नहीं है?”

उस आदमी की समझ में इनकी बात नहीं आयी। वे सिर्फ चीन शब्द को ही समझ सके। उन्होंने मुझे टूटी-फूटी हिन्दी में पूछा- “मैं देख रहा हूँ कि सब मुझे ऐसे घूर रहे हैं जैसे मैं किसी दूसरे ग्रह या चिड़ियाघर से आया हूँ। वे मेरे बारे में क्या कह रहे हैं। वे मुझे चीन देश का मान कर शत्रु समझ रहे हैं क्या?” दूसरे ही पल काफी गुस्से में आकर उस आदमी ने कहा- “क्या यह देश अकेले तुम्हारे बाप का है? हम इस देश के नागरिक नहीं हैं क्या?”

उसकी खीझ भरी बातों को सुनकर तेलुगु दम्पति ने मुझे पूछा- “चीन का यह आदमी हमें गाली देते हुए क्या बोल रहा है?”

मानो मैं चीन और भारत के विवाद में मध्यस्थता कर रहा था। मैंने उन दोनों के बीच उपजने वाले कलह को टालने के इरादे से तेलुगु दम्पति से कहा- “ये हमारे पूर्वोत्तर भारत के निवासी हैं। ये विदेशी नहीं हैं। ये तुम्हारे परिवार की तारीफ कर रहे हैं।”

पूर्वोत्तर के उस भारतीय से कहा- “वे तुम्हारा गुणगान करते हुए कह रहे हैं कि तुम देश के उत्तर-पूर्वांचल के रक्षक हो और चीन के शत्रु हो।” उसके बाद वह आदमी चुप रहा। तब तक ट्रेन धनबाद शहर में प्रवेश कर चुकी थी। उतरने के लिए सभी अपना-अपना सामान तैयार करने लगे। अन्त में हमारी ट्रेन

धनबाद स्टेशन में पहुंच गयी। हम सब ट्रेन से उतर कर अपनी-अपनी मंजिल की ओर निकल पड़े। मैं देख रहा था कि स्टेशन से बाहर निकलने तक पूर्वोत्तर भारत के निवासी और तेलुगु दंपति एक दूसरे को संदेह की निगाह से चुपके से निहार लेते थे। स्टेशन के बाहर भीड़ में हम एक दूसरे से अलग हो गये।

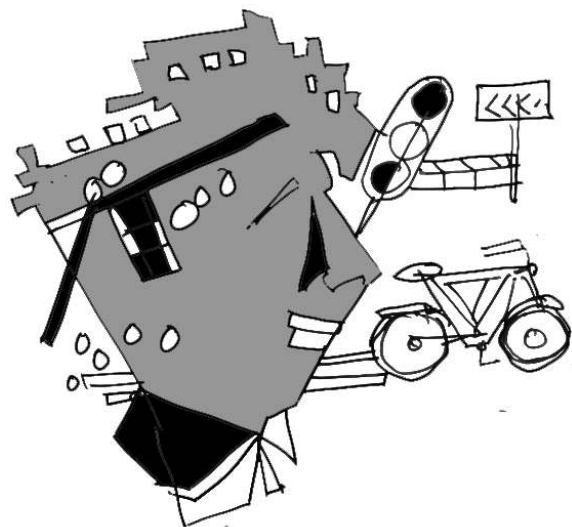
धनबाद से मटकुरिआ, गोधर, कुसुण्डा, लोयाबाद, कतरास, सोनारडिह होते हुए मैं अपनी मंजिल जोगीडिह में पहुँचा। पहाड़ के ऊपर भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण संस्था के अपने निजी क्वार्टर्स नहीं हैं। दफ्तर में ज्वाइनिंग रिपोर्ट दाखिल करके दोपहर को संस्था के एक चपरासी को लेकर पास के गाँव में किराये का मकान ढूँढ़ने निकला।

पगडंडी में चलते समय मैंने उसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा कि उसका नाम जितन भूईया। उसने पूछा किब। बूजीअ। पकान। मक। याह? मैंने कहा कि कमरे। न। म। दाशरथि भूयाँ। मेरा नाम सुनते ही जितन खुश हो गया। जितन से पूछा- गाँव के ज्यादातर लोगों की आजीविका क्या है? उसने उत्तर दिया- “सभी कोयले की खदान पर निर्भर करते हैं। जिनकी नौकरी भारत कुकिंग कोल लिमिटेड में नहीं है, वे कोयला संग्रह करके बेचते हैं या खेती-बाड़ी करके परिवार चलाते हैं।”

गाँव की सड़क पर जाते समय मैंने दोनों तरफ देखा कि अम्बा भूईया, लोबिन भूईया, सोनाराम भूईया, कोचे भूईया, जिगा भूईया, चंपाइ भूईया, जोबा भूईया, स्टिफेन भूईया, दानिएल भूईया, इग्नेश भूईया, आदि वे जो भारत कुकिंग कोल लिमिटेड में काम कर रहे थे, उनके नामपट्ट मकान की दीवारों पर टाँगे हुए थे।

जितन से खबर मिली कि हमारी संस्था के एक कर्मचारी निर्मल चौपाल उसी गाँव में एक किराये का मकान लेकर रह रहे हैं। मैंने कहा कि चौपाल साहब के पास ले चलो। उनसे मेरा परिचय हुआ। अविवाहित निर्मल चौपाल अकेले रह रहे थे। वे काफी सरल और स्नेही स्वभाव के थे। जब तक मुझे किराये का मकान नहीं मिला, मैं उनके साथ रहा। बाद में मुझे एक खपरैल छत वाला मकान मिला और मैं वहीं चला गया। दीवार पर मेरा नामपट्ट टाँगा गया- दाशरथि भूयाँ, सर्वेक्षक, भारत भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण संस्था।

मेरे नामपट्ट को देख कर मेरे प्रति गाँव के लोगों का सम्मान बढ़ा। किसीने कोयले की अंगीठी बना दी, तो किसीने फोकट में कोयला दे दिया। वे अपने बगीचे में लगे केला, नींबू, बैंगन, पपीता आदि लेकर मेरे घर रोज आते रहे। कोयले की अंगीठी पर खाना बनाते समय ऐलुमिनियम के बरतन पिघल न जाए, इसलिए बरतनों की पेंदी में गीली मिट्टी का लेप लगा

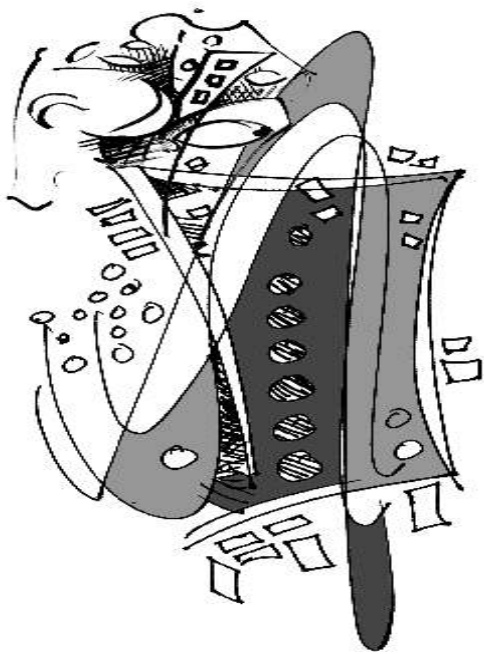


कर सुखा देते थे। कुछ लोग वादा करके गये कि जरूरत पड़ने पर आधी रात को भी वे सहायता करने आ जाएँगे। कार्यालय आते-जाते स मयर ठेजसुबह-शाम साहबन मस्कार 'सुनने को मिला।

मेरे सहकर्मी निर्मल चौपाल का घर झारखण्ड-पश्चिमबंग के सीमांत इलाके के बराकर शहर के नजदीक के एक गाँव में है। चौपाल मेरे सुख-दुख का प्रवासी मित्र है। उससे सुना कि वह अपनी शादी के लिए लड़की की खोज कर रहा है। चूँकि गाँव पास ही है, इसलिए वह दूसरे और चौथे शनिवार और दूसरी छुट्टियों में गाँव चला जाता है।

निर्मल ने अपनी शादी का निमंत्रण दिया। बारात में आने के लिए मजबूर किया। बारात में बाराती होकर जाने के लिये मेरी जिनती चाह थी, उससे कहीं अधिक नई जगह की अनजान संस्कृति के बारे में जानने के लिए मेरा मन व्याकुल था। इसलिए मैंने बिना किसी दुविधा के हाँ कर दी। मैं विवाह के दिन सुबह उसके गाँव में पहुँचा। बारात पूरी तरह तैयार थी। सभी मेरे ही इंतजार में थे। मेरे पहुँचते ही बारात की गाड़ी निकली।

निर्मल की ससुराल ज्यादा दूर नहीं थी। हम अपराह्न तक उस गाँव में पहुँच गये। दामोदर नदी के किनारे हरे-भरे परिवेश में गाँव काफी खूबसूरत लग रहा था। नदी को पार करते ही गाँव में प्रवेश करने का रास्ता आ गया। गाँव के प्रारंभ में ही एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर सुशोभित हो रहा था। नदी के निर्मल जल में मन्दिर प्रतिबिम्बित हो रहा था। मन्दिर की प्राचीन और अद्भुत नक्काशी को देख कर मैं मुग्ध हो उठा। बाराती उतर पड़े और रोशनी तथा बँड पार्टी की प्रस्तुति शुरू हो गयी। मैंने एक आदमी से पूछ कर यह जानकारी ली कि उस स्थान से निर्मल की ससुराल तक पहुँचने के लिए बारात को कम-से-कम दो-



तीन घण्टे लग ही जाएँगे। मैं अपने गवेषक मन और अनुसंधानी आँखों के कारण उस मंदिर के पास ही रह गया। सच बताएँ तो बारात की आतिशबाजी, नाच-गाने, हृदय को कैँपा देने वाले डीजे यन्त्र के संगीत और प्रदूषण से मुझे कोई लगाव नहीं था।

मन्दिर में पहुँचने के लिए ज्यादा समय नहीं लगा। मन्दिर के सामने चाय की दुकानें थीं। सोचा कि पहले चाय पीकर ताजा हो जाएँ। चाय की एक दुकान में पहुँच कर चाय की फरमाइश की। दुकानदार ने कुछ देर तक संदेह की नजर से निहारने के बाद कहा- “चीनी नहीं है।”

मैंने कहा- “चीनी न होने से भी चलेगा। बिना चीनी की पी लेंगे, बिना चीनी की चाय दीजिए।”

अचानक दुकानदार ने अपने कहने के लहजे को बदलते हुए कहा कि चाय की पत्ती नहीं है। मैं वहाँ से उसकी बगलवाली चाय की दुकान में गया। बगलवाले दुकानदार ने भी मुझे उसी लहजे में इनकार कर दिया। मैं समझ नहीं सका कि ये सभी व्यापारी हैं, फिर भी इस तरह ग्राहक को निराश करने का असली कारण क्या हो सकता है? चाय के बिना भी जिया जा सकता है, इसलिए उनकी बातों को महत्व न देकर मैं मन्दिर की ओर कदम बढ़ाने लगा। मन्दिर के सिंहद्वार के सामने बैठे हुए एक वृद्ध व्यक्ति से धूप-दीप आदि सामग्रियाँ माँगते ही उन्होंने कहा कि यह सब संध्या के श्रद्धालुओं के लिए है।

मैंने मन ही मन सोचा- “कैसी अजीब बात है। यदि संध्या के श्रद्धालुओं के लिए है, तो फिर अपराह्न से ही सजा कर बैठे क्यों हैं।”

ईश्वर की आराधना, बिना दीप और धूप से भी की जा सकती है। मैं मन्दिर में जाने के लिए अहाते के प्रवेश द्वार को खोलते ही अन्दर से किसी ने बन्द करने की कोशिश की। मैं कुछ समझ नहीं सका। कहा- “मैं ठाकुरजी के दर्शन करना चाहता हूँ।”

उसने कहा- “तुम निर्मल चौपाल की बारात में आये हो। तुम जरूर दलित जाति के हो। दलितों को इस गाँव के मन्दिर में प्रवेश की मनाही है।”

मैंने कहा- “नहीं मैं दलित नहीं हूँ।”

मुझे तब तक पता नहीं था कि निर्मल चौपाल एक दलित हैं। दलित हुआ तो क्या हुआ। वे भी हिन्दू हैं। तुम्हारा जितना अधिकार है, उनका भी उतना ही अधिकार है। उनके मन्दिर प्रवेश को रोकने वाले तुम कौन हो? बिहार-झारखण्ड की जाति-प्रथा को लेकर कई बार वाद-विवाद हुआ है। अखबारों में उसकी चर्चा मैंने पढ़ी थी, अब उसे खुद महसूस किया।

मैंने सफाई देते हुए कहा- “पुजारी जी! यह सच है कि मैं निर्मल चौपाल की बारात में आया हूँ, पर मैं दलित नहीं हूँ।”

उलटा पुजारी ने तर्क रखा- “दलित की बारात में क्या ब्रह्मण, कायस्त, क्षत्रिय आते हैं। तुम ने मुझे बेवकूफ समझ रखा है क्या। बताओ, क्या तुम्हारे माथे में लिखा है कि तुम एक दलित नहीं हो।”

मेरा दिमाग गरम हो गया। पूछा- “तुम्हारे माथे में लिखा है क्या कि तुम एक ब्रह्मण हो?”

क्रोध में आकर पुजारी ने कमीज खोल कर जनेऊ को दिखाते हुए कहा- “देख रहे हो कि यह क्या है? तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि तुम एक दलित नहीं हो।”

मेरे शरीर में जनेऊ नहीं था। उन्हें कैसे समझाता कि मैं एक दलित नहीं हूँ। मैं वकालत करने लगा- “भक्त और भगवान के बीच मध्यस्थता करने वाले तुम कौन हो?”

फिर मैंने जबरदस्ती मन्दिर में घुसने की कोशिश की तो वह ऊँची आवाज में आसपास के लोगों को बुलाने लगा। चाय बनाने वालों से लेकर दूसरे सभी लोगों ने मुझे घेर लिया और इधर-उधर ढकेलने लगे। उस ठेलाठेल में मेरा सिर फट गया। मैं चुपचाप लौटकर बारात की भीड़ में शामिल हो गया। मुझे लगा कि निर्मल चौपाल की शादी को ध्यान में रख कर यह सब सवर्णों का पूर्व प्रायोजित कार्यक्रम था।”

बिना देर किये मैं बारात के जुलूस में शामिल हो गया। निर्मल ने मेरे फटे हुए सिर को लेकर इसका कारण पूछा, पर सांप्रदायिक सद्भाव के बिगड़ने के भय से मैंने सारी बातें छिपा लीं। शादी-ब्याह की रस्में खत्म होने के बाद जब वे दफ्तर

लौटे, तब मैंने उन्हें सारी बातें बतायीं। सारी बातें सुनने के बाद उसके मुहँ से एक ही तीखी बात निकली थी- “क्या देश के सारे मन्दिर उनके बाप के हैं?”

दीपावली के दिन मौसम ने करवट ली। उसके अगले दिन से ठण्ड का प्रभाव अनुभूत होने लगा। सर्द मौसम के कारण चारों तरफ ठण्डी हवा फैलने लगी। ठण्ड के मारे काँपने लगा योगीडिह का इलाका। धीरे-धीरे पारा खिसकने लगा। सभी सुबह के सूरज की गरमी की जरूरत को महसूस करने लगे। रंग-बिरंगे शीत-वस्त्रों से सभी खुद को सजाने लगे। उनकी दिनचर्या में परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। झारखण्ड की अपूर्व शोभा के आगार पहाड़, पर्वत और जंगलों में लकड़ी का कोयला पाने के लिये आग लगायी गयी।

दिसम्बर के महीने की एक शाम। मैं दफ्तर से लौट कर काँपनेवाली सर्दी से बचने के लिए एक तेलकी अंगूठी के पास बैठ कर ऊष्मा का अनुभव कर रहा था। गाँव के कुछ नामजद व्यक्ति आ पहुँचे। मुझे वे किसी एक उत्सव में मुख्य अतिथि बनाने का प्रस्ताव लेकर आये थे। मेरे सम्मति प्रदान करने के बाद निमंत्रण-पत्र छपवाये गये। लेकिन उस उत्सव के बारे में मेरी पहले से कोई धारणा नहीं थी। परिस्थिति कुछ भी हो, लेकिन मुझे जाना ही पड़ा। “मान या न मान, मैं तेरा मेहमान” नीति से मैं उत्सव में शामिल हुआ। उस उत्सव का आयोजन गाँव के छोर पर पहाड़ के ऊपर एक गिरजाघर में हुआ था। उत्सव खत्म होने के बाद दगाँव के मुखियामुझे गिरजाघर की एक छोटी-सी कोठरी में ले गये और वहाँ मन को लुभाने वाला स्वादिष्ट भोजन परोसा। मेरे पास बैठ कर कहा- “कई दिनों से मैं आपको एक बात पूछने की सोच रहा हूँ। उस बारे में आपकी राय जानना चाहूँगा।”

मैंने पूछा- बात क्या है?

उन्होंने कहा- “आप तो अविवाहित हैं। आपके मित्र निर्मल चौपाल ने विवाह कर लिया है। आप क्यों अविवाहित रहेंगे। हमारे गिरजाघर के पादरी यानी मेरे बड़े भाई की एकलौती लड़की है। रोशनी उसका नाम है। पास ही के कालेज में बी.ए. में पढ़ रही है। आप ने उसे रास्ते में आते-जाते हुए देखा होगा। मेरा कहना यह है कि सर, आप जरूर समझ रहे होंगे! इस सिलसिले में आपकी राय लेने के लिए मुझे बड़े भाई ने बहुत दिन पहले कहा था। इस कारण आपको उत्सव का मुख्य

अतिथि बनाया गया। गाँव में आप और बड़े भाई साहब की बेटी को लेकर अफवाहें फैल रही हैं।”

फिर उन्होंने मेरी जाति और गोत्र के बारे में पूछा। मैंने कहा- “तुम्हारे परिवार के कुलनाम के साथ मेरा कुलनाम मेल खाता है।” उसके बाद असम-बंग प्रदेश और उत्कल के जमींदारों के साथ मेरे जाति-गोत्र का सारा ऐतिहासिक सम्पर्क उन्हें समझा दिया।

मेरे जाति-गोत्र को सुनकर गाँव के मुखिया, उनके बड़े भाई गिरजाघर के पादरी और बेटी रोशनी को कितनी ठेस पहुँची होगी, उसे मैं नहीं जान सका। गाँव के दूसरे लोगों को कितना दुःख हुआ होगा, उस बारे में भी मुझे पता नहीं चला। किसी की जाति-गोत्र को सुनकर किसी को ठेस पहुँचने की बात पहली बार सुनी। लेकिन रोशनी के साथ मेरे नाम को जोड़कर जो अफवाहें फैली थी, उससे मेरे मन को काफी ठेस पहुँची थी।

मेरे जाति-गोत्र को सुनने के दिन से वे मुझसे धीरे-धीरे दूर होते गये। थोड़े ही दिनों में उनसे मिलने वाली स्नेह-श्रद्धा कहीं गायब हो गयी। पहले की तरह अब उनसे स्नेह-श्रद्धा मिल नहीं रही थी। उस गाँव में ‘जल बिना मछली’ की तरह मेरे प्राण निस्संग पीड़ा से छटपटाने लगे। सोचा कि इस गाँव को छोड़कर पास के शहर में जाकर रहूँ। इसमें आने-जाने की तकलीफ तो है ही। पर रोज आते-जाते समय कोयले की धूल और धूँ से नहाते हुए दमा जैसी बीमारी को निमंत्रण देने का भय सब से ज्यादा था।

अन्त में तबादले के लिए अर्जी देने क्षेत्रीय कार्यालयर ांची या अर्जी देने के लिए एक मख त्म करके रांची-धनबाद नाइट एक्सप्रेस पकड़ने के लिए बस अड्डे की ओर निकल पड़ा। बस अड्डे की ओर जाते समय रास्ते में देखा कि एक टी.वी. की दुकान के सामने मैच देखने के लिए काफी भीड़ जमी हुई है। उस दिन भारत और पाकिस्तान के बीच क्रिकेट का मैच चल रहा था। सभी खेल के चरम उत्कर्ष का आनन्द ले रहे थे। भारत हार के कगार पर पहुँच चुका था। अन्त में सब का आकलन सच साबित हुआ। मैं देख रहा था कि किसी प्रकार के अशोभनीय मंतव्य से बचने के लिए एक विशेष धर्म-संप्रदाय के युवक वहाँ से खिसक रहे थे। पीछे से किसी ने टिप्पणी की, “देखो, पाकिस्तान की विजय को देख कर ये देशप्रेमी अपने घरों में त्योहार मनाने के लिए खुशी के मारे लौट रहे हैं।”



मेरा मन कह रहा था, “उनके देशप्रेम का इम्तहान मत लो। यह देश सबका है। अविश्वास का नतीजा देश के लिए हितकारक नहीं है।” लेकिन वैयक्तिक सुरक्षा की दृष्टि से अपने मन की बातें उनके सामने खोल नहीं सका। उस उत्तर-पूर्वांचल और निर्मल चौपाल की (यह देश सिर्फ तुम्हारे बाप का है क्या?) बातों को मन-ही-मन दोहराते हुए धनबाद नाइट एक्सप्रेस बस में जा बैठा।

कुछ महीनों के बाद तबादले की चिट्ठी दफ्तर में पहुँची। उस वक्त मुझे बेहद खुशी हुई। लेकिन उस चिट्ठी में लिखे गये आदेश को पढ़ने के बाद मेरे होश उड़ गये। मेरा तबादला सुदूर तमिलनाडू में हुआ है। तबादला की खबर को सुनकर सबसे ज्यादा दुःख हुआ था निर्मल चौपाल को। लेकिन मैंने उसे यह नहीं कहा कि तबादले की अर्जी मैंने खुद दी थी।

अब आसमान से गिरा तो खजूर में अटका। चेन्नई शहर में एक कब्र-हुमजिलाइ मारत (अपार्टमेंट) में मैं काना लया। जाति, संप्रदाय, अंचल आदि को लेकर मेरे सामने जो घटनाएँ घटित हो रही थीं उससे भारत की संहति, एकता और राष्ट्र-निर्माण में भयंकर बाधा उपज रही थी। मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि आने वाले दिनों में भी ऐसी ही घटनाएँ घटित होंगी। इसके समाधान के लिए क्या किया जा सकता है? अपने बचे-खुचे समय का उपयोग करके मैंने देश की इन समस्याओं पर आलेख लिखना शुरू किया। चेन्नई से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक अखबार में धारावाहिक स्तम्भ लिखना शुरू किया। मेरे आलेख तमिल में अनूदित होकर स्थानीय अखबारों में प्रकाशित हुए। थोड़े दिनों में मैं एक स्तम्भ-लेखक के रूप में परिचित हो गया। उसके बाद मुझे सभा-समितियों में मुख्य-अतिथि के रूप में निमंत्रित किया गया।

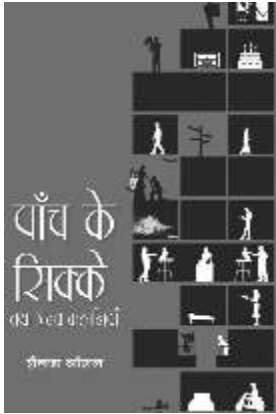
एक दिन एक सम्मेलन में मुख्य-वक्ता होने का निमंत्रण मिला। मुझे तान हींथ कि कस सम्मेलन के कार्यकर्ता कस दल/संस्था के हैं। उस दिन का विषय था-“द्रविड़ों पर आर्य-संस्कृति के साम्रज्यवाद की प्रतिष्ठा : कितना सच और कितना झूठ।”

सभा-स्थान में मेरा एक पूर्ण-अवयव का फोटो लगा हुआ था और उस में मेरे नाम को बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया था- आज के मुख्य-वक्ता भारत के जाने माने स्तम्भकार श्री...। सभा-स्थान में भीड़ खचाखच भरी हुई थी। मैंने भाषण देना प्रारंभ किया- “हे मेरे तमिल भाई और बहनों। तमिलनाडू विशेषकर दक्षिण भारत के लोग ब्राह्मण-विरोधी, हिन्दी-विरोधी और उत्तर भारत के विरोधी के रूप में जाने जाते हैं। उनके मत में द्रविड़ ही भारत के मूल निवासी हैं। आर्य भारत के बाहर से आये थे और द्रविड़ों को पराजित करके दक्षिण की

तरफ भगा दिया। और उनका विश्वास है कि फिर आर्यों ने अपने साम्रज्यवाद की प्रतिष्ठा की थी। वेद और संस्कृत-साहित्य पर आधारित परंपरागत हिन्दू-धर्म और हिन्दी-भाषा को आर्यों का सांस्कृतिक साम्रज्यवाद कह कर तमिलनाडू में उसका विरोध किया जा रहा है। ब्राह्मणों ने दक्षिण में आर्य-संस्कृति को थोपने में सहायता पहुँचायी थी, इसलिए ब्राह्मण द्रविड़ों के शत्रु हैं। अतः द्राविड़ लोग ब्राह्मणों के ईश्वर को भी स्वीकार नहीं करते हैं। हम लोगों को एक झूठा इतिहास पढ़ा कर ऐसे विचारों को पैदा किया गया है। एक कल्पित इतिहास की रचना करके, उसमें द्रविड़ और आर्य जाति के विभाजन को उत्साहित किया गया है। आर्य-द्रविड़ विभाजन के कारण भारत विश्व का पहला देश होगा जहाँ लोग खुद को भारतीय कहते समय संदेह प्रकट करेंगे। सिंधु सभ्यता का आविष्कार करने वाले ब्रिटिश पण्डितों ने ही इस विभाजन का बीज बोया है। इसका प्रमाण किसी के पास नहीं है कि आर्य कहाँ से आये थे। आर्य-द्रविड़ विभाजन एक झूठ है। देश को विभाजित करने के लिये अंग्रेजों का यह एक ऐतिहासिक षड्यंत्र था। वे विभाजनकारी हैं। जाने से पहले वे जाति, वंश, संप्रदायों के आधार पर भारत को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटने का बीज बोकर गये हैं। भारत उपमहादेश में सभी जाति, उपजातियों के खून के नमूनों के परीक्षण से पता चला है कि जाति-धर्म और संप्रदाय के निरपेक्ष में सभी एक ही पितृ-पुरुष की संतान हैं। सभी की नसों और धमनियों में एक ही रक्त है। आर्य-द्रविड़ विवाद अर्थहीन, एक अपवाद, एक मिथक, एक कल्पित कथा है। यदि किसी के पास इसका सही प्रमाण है, तो उस पर प्रकाश डाला जाना जरूरी है।”

मेरा भाषण चल रहा था, सभा में तालियों की गड़गड़ाहट गूँज रही थी। अचानक सभा-स्थान में जबरदस्ती कुछ लोग घुस आये। वे गरजते हुए नारा लगा रहे थे- “उत्तर भारत का यह चालाक आदमी द्रविड़ जाति को बेवकूफ बनाने के लिए आया हुआ है। यह चालाक आदमी उत्तर भारतीय आर्य है। हमारे पुराने विश्वास और इतिहास को ठेस पहुँचा रहा है। हम आर्य-द्रविड़ विभाजन पर विश्वास रखते हैं।” इस तरह की सिंह-गर्जना के बीच अचानक कुर्सियों को फेंकना शुरू कर दिया। जान बचाने के लिए जब मैं सभा-मंच को छोड़ कर भागने की कोशिश कर रहा था, उस समय ऊपर से एक घूमती हुई लकड़ी की कुर्सी जोर-से आकर मेरे सिर से टकराई। फिर क्या हुआ, मुझे कुछ नहीं पता। उसके कुछ घण्टों बाद चेन्नई के अस्पताल में मैंने खुद को पाया।

सम्पर्क : सी-33, शरधाबालि चौथी गली एक्सटेंशन
खोड़ासिंग, ब्रह्मपुर, जिला गंजाम-760010 (ओडिशा)
मोबाईल : 9437037485



कृति : पाँच के सिक्के तथा अन्य कहानियाँ
लेखक : शैलजा कौशल
विधा : कथा
मूल्य : ₹ 245
प्रकाशक : आस्था प्रकाशन, जालन्धर

समीक्ष्य कृति 'पाँच के सिक्के' कथाकार शैलजा कौशल का द्वितीय हिन्दी कहानी संग्रह है। इस से पहले वे हिन्दी साहित्य जगत् को 'वास्तव में' नामक कहानी संग्रह सौंप चुकी हैं। पुस्तक का शीर्षक 'पाँच के सिक्के' स्वयं नई पीढ़ी को उत्सुकता के तो एक विशेष पीढ़ी को उनके बचपन की अठखेलियों व रमलमपेल के धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। संकलन में बारह कहानियाँ समाहित हैं जो कि अपने-अपने विशिष्ट भावलोक का दर्पणात्मक प्रतिबिम्ब हैं। शीर्षक कहानी 'पाँच के सिक्के' में जया प्रेयसी की यादों में सराबोर नायक के स्मृति-पटल पर एक के बाद एक ताढ़ा होते चुलबुले प्रेम-प्रसंगों का मनोवैज्ञानात्मक किन्तु भावपूर्ण विश्लेषण मनोरम है। कहानी का अन्त भाव-विभोर कर गया। कहानी 'मेरी सिक्का' सच्चे-प्रेम की परिणति है। यह कहानी पाठक-मन को द्रवित करने के साथ ही उसे गुदगुदाने का मादा भी रखती है। कहानी 'इश्तिहार' नवीन कथ्य-बोध लिए है, जिसमें अनाथ मुढ़ लिस नायक 'आलोक' अपनी बहन सुमति का भार अपने बोझिल काँधों पर औढ़े 'ह्युमन होर्डिंग' के तौर पर बाढ़ार में खड़ा होकर गुमनाम अँधेरी कोठड़ी में दँद हो जाता है। कहानी 'कचौरी वाली गली' में नायक शिशिर को किताब में एक सुन्दर बाला की तस्वीर मिलती है और साथ में पते के नाम पर 'कचौरी वाली गली' लिखा हुआ। जैसे-जैसे कथ्य अपनी यात्रा पर अग्रसर होता है वैसे-वैसे ही पाठक-मन जिज्ञासु एवं उत्सुक होने लगता है कि आगे क्या और कैसे घटित होने वाला है ?

कहानी 'मिसेढ़ लोबो स्पेशल' में 'सना लोबो' अपनी दादी की एक से एक ढायकेदार 'रेसिपी' को एक अढ़ बार के कालम में सिलसिलेवार लिखकर बहुत मशहूर हो जाती है। यह कहानी हमें मिसेढ़ लोबो की 'रेसिपीढ़-वसीयत' से नाटकीय अन्दाढ़ में रू-ब रू कराती है। कहानी 'जिगर का टुकड़ा' एक छोटी बहन के अथाह प्रेम की कहानी है जो दिल पर गहरा असर छोड़ती है। दो जवान दिलों में बेपनाह मुहब्बत मगर मढ़ हब इनके बीच दीवार बना खड़ा है कहानी 'लौटते रास्ते' में। नायक 'मोहम्मद अनीस' व नायिका 'माही दूबे' बिछुड़कर अलग-अलग शादी के बन्धन में बँध जाते हैं मगर अन्त में एक पात्र की दर्दनाक परिस्थितियों से जूझते हुए दुर्घटनास्थल पर मृत्यु कहानी को विराम देती है।

घटना-प्रधान कहानी 'ढढ़' में निर्भीक, कर्मठ, ईमानदार व जूझारू चिराग का 'संघर्ष' एक पत्रकार के रूप में दर्शाया गया है। कहानी 'लल्ली का सुन्दर' के कथ्य में ढरीबी की हाँडी में पकते - पकते गर्भवती 'लल्ली' एवं उसके मढ़ दूर पति 'सुन्दर' के सुहाने स्वप्न राढ़ हो जाते हैं। पति 'सुन्दर' गटर में फँसकर जहरीली गैस से दम घुटने के कारण मृत्यु को प्राप्त होता है। कुछ ही दिनों पश्चात लल्ली को संतान के रूप में पुनः अपने सुन्दर का मिलना उसे एक नई आशा की किरण थमा जाता है। उद्देश्यपूर्ण एक सशक्त कहानी। 'शर्म की मूर्ति' कहानी एक ढरीब परिवार की दास्तान है, जिसमें मात-पिता भगवती व सज्जन, बेटा 'पेढ़ा' व अत्यन्त सुन्दर बेटा 'बिनती' हैं।

पाठक मन को जिज्ञासु बनाए रखना समीक्ष्य कृति 'पाँच के सिक्के' की कहानियों का सशक्त पहलू है। कथ्य निहित परिस्थितियों में पात्रों की मनोस्थितियों का मनोवैज्ञानात्मक विश्लेषण एक विशेषता बनकर उभरा है इन कहानियों में। लेखिका शैलजा ने अपनी कहानियों में यथार्थवादिता के ढ लसढ़े को तरजीह दी है। कहानियाँ निरन्तर मार्मिकता व रोचकता की डोर भी थामे रहती हैं। भाषा सरल, स्पष्ट व विषय के अनुरूप है, जिसके फलस्वरूप दुरुहता न होकर प्रभावशीलता बनी रहती है। संवाद को तरजीह न देते हुए लेखिका ने वर्णनात्मक शैली को अपनाया है। शैलजा की कहानियों में कला के शास्त्रीय नियमों की अपेक्षा पाठक-मन पर प्रभाव-क्षमता अंकित करने का कला-कौशल अधिक झलकता है, जो कि एक विशेष महत्व रखता है। विश्वास के साथ कहाँ जा सकता है कि इस संग्रह की अधिकतर कहानियाँ पाठक-मन पर लम्बे समय तक अपनी छाप छोड़ने में सक्षम हैं।

समीक्षक : डॉ. सुशील 'हसरत' नरेलवी, 1461-बी, सेक्टर 37-डी, चंडीगढ़; मोबाइल : 9216501966



कृति : आँगन का शजर
लेखक : ममता किरण
विधा : काव्य
मूल्य : ₹ 200
प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली

मैं ढढ़ ल तो नहीं कहती, पर ढढ़ ल के आसपास जरूर रहती हूँ। इसलिए सुनने और पढ़ने का शौक भी है। मेरी प्रिय कवियत्री ममता किरण का ढढ़ ल संग्रह 'आँगन का शजर' जैसे ही अमेढ़ न से मिला,, पहली ढुर्सत में ही पढ़ गई। मेरी नढ़ र से आँगन का शजर।

अल्ढ़ ढढ़ कभी मन के आँगन में उढ़ते हैं.. कभी दिल के किसी कोने में बैठ जाते हैं.. कभी खिलते हैं कभी खुशबू बिखेरते हैं... यही अल्ढ़ ढढ़ कभी ढढ़ ल तो कभी कविता का चेहरा धारण कर लेते हैं।

ममता किरण की ढढ़ ल की पहली किताब 'आँगन का शजर' भी अल्ढ़ ढढ़ का ऐसा नक्काशीदार गुलदस्ता है जो अनायस ही ढेहन में उतर जाता है। उनके शेरों का दायरा बहुत विस्तृत है। जहाँ एक ओर संवेदना, प्रेम, नीति और राजनीति की बारीक पकढ़ गढ़ लों में दिखती है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान परिवारों का मिजाज, सामाजिक परिवेश, राजनीतिक गलियारों पर कटाक्ष भी देखने को मिलता है। विषयों की नई पुरानी जमीन में गढ़ ब का तालमेल है।

क्योंकि ढढ़ ल का सबसे जरूरी पहलू प्रेम ही है- इसलिए सबसे पहले प्रेम की, रुमानियत की भीनी भीनी खुशबू देखिए-

फोन वो खुशबू कहाँ से ला सकेगा/वो जो आती थी तुम्हारी चिट्ठियों से।

तुम ने खुशियों के भरे रंग मेरे जीवन में/माँग में अपनी सितारों सा सजा लूँ तुमको।

इतना ही नहीं, रिश्तों की मार्मिकता और दर्द भी उनकी ढढ़ लों से बयाँ होती है। यह दर्द मेरा, आपका, हम सब का मालूम होता है-

सिर्फ दीवारें घर नहीं होतीं/काश सचमुच में एक घर होता।

बेटियाँ गर ढि यादा पढ़ जाएं/उनके अनुकूल वर नहीं मिलता।

बेटी और बेटे के मासूम रिश्तों को न सिर्फ ममता जी ने जिया है, बल्कि आज के युवा वर्गों के लिए शिक्षा का संकेत भी दिया है। इसीलिए आज के दौर में हकीकत बयानी उनकी ढढ़ लों में देखिए-

बेटे, मैं तेरी माँ हूँ जरा बोल अदब से/अच्छ नहीं है ये तेरा लहजा मेरे आगे

मुबारक हो तुम्हें अपना खुलापन/मेरी तहढ़ीब परदे से अयाँ है।

घर तो काईम है मगर घर की वो तसवीर नहीं/घर के रिश्तों में मुहब्बत की वो तासीर नहीं।

वक्त बहुत तेढ़ी से बदल रहा है। बदले दौर में रिश्ते भी बदल रहें हैं। रिश्तों के मायने भी करवट ले चुके हैं। यही बदलाव ढढ़ लकारा ममता किरण के शेरों में भी उभर कर सामने आया है-

नगर में जब से बच्चे रह गये और गांव में दादी/लगाए कौन फिर आवाढ़, परियों को बुलाने की

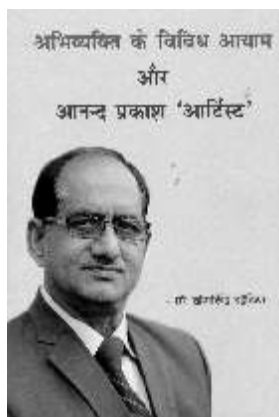
इन सब अशआर से जुदा सियासती दाव पेच, उठा पटक और साथ ही देश प्रेम के शेर आज की जर्मी पर माकूल लगते हैं-

यकीन मानो सियासत में बस यही होगा/गवाह चुस्त मगर सुस्त मुढ़ई होगा।

सेंकी है हादसों पे सियासत ने रोटियां/क्यों हादसा हुआ किसी की नढ़ र गयी।

'आँगन का शजर' की गढ़ लों में ममता जी ने निःसंदेह और भी कई गंभीर बातों को समेटा है। यढ़ीनन ये ढि ताब ढढ़ ल के साथ कविता के शौढ़ीन लोगों को भी पसंद आएगी। खूबसूरत ढ्यालों, बातों, विशिष्ट विषयों को ढढ़ ल के मोहक फ्रेम में सजाकर पाठकों तक पहुंचाने का ढढ़ लकारा ममता किरण जी को हार्दिक बधाई।

समीक्षक : रूबी मोहन्ती, फ्लैट नं. 45, कादम्बरी अपार्टमेंट्स, सेक्टर- 9, रोहिणी, दिल्ली-110085



कृति : अभिव्यक्ति के विविध आयाम और आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट
लेखक : डॉ. खेमसिंह डहेरिया
विधा : आलोचना
मूल्य : ₹ 500
प्रकाशक : सूर्य भारती प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली

‘अभिव्यक्ति के विविध आयाम और आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट’ सूर्य भारती प्रकाशन से प्रकाशित डॉ. खेमसिंह डहेरिया की शोधात्मक पुस्तक है जिसमें उन्होंने आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट के साहित्य एवं कला के विविध पक्षों पर गहनता से विचार-विश्लेषण करते हुए उनके साहित्य एवं साहित्यिक मूल्यों के साथ उनके कलात्मक आयामों पर विस्तृत दृष्टि डालते हुए साहित्य एवं समाज को उनके अवदान से परिचित करवाने का सतुल्य प्रयास किया है।

पुस्तक छः अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय- ‘बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी: आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट’ में उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं - मानवता, संवेदनशीलता, सहजता, संघर्षशीलता की विस्तार से व्याख्या की है तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा, परिवार का परिचय देते हुए उनके साहित्यिक सम्मान, पुरस्कारों एवं उपलब्धियों का उल्लेख तथ्यों के साथ किया है, जो शोध की पहली आवश्यकता है। इस अध्याय की विशेषता यह है कि डॉ. खेमसिंह डहेरिया ने आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को ‘प्रबुद्ध व्यक्तियों की नजर में’ शीर्षक से विवेचित-विश्लेषित करते हुए उनके व्यक्तित्व को एक उदात्तता एवं गरिमा प्रदान की है।

द्वितीय अध्याय- ‘अभिव्यक्ति: अर्थ, स्वरूप एवं आयाम और आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट की कृति रेडियो पत्रकारिता संचार के निकष पर’ में अभिव्यक्ति के अर्थ, स्वरूप पर विचार करते हुए अभिव्यक्ति के विविध आयामों-मौखिक तथा लिखित रूपों की विवेचना करते हुए संचार के विविध आयामों की चर्चा की है तथा आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट की रचना ‘रेडियो पत्रकारिता’ की विस्तृत समीक्षा करते हुए निष्कर्ष दिया है - ‘यह पुस्तक आकाशवाणी की प्रसारण व्यवस्था, रेडियो लेखन व पत्रकारिता आदि पर शोध करने वाले शोधार्थियों की आधार सामग्री सम्बन्धी आवश्यकता को भी पूरी करती है।’ (पृ0 98)

‘आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट का कथा-साहित्य’ शीर्षक तृतीय अध्याय है जिसका विस्तार 43 पृष्ठों का है। इसमें कहानी एवं उपन्यास की परिभाषा एवं विकास का उल्लेख करते हुए आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट के कहानी संग्रह ‘कितने पास कितने दूर’ की समीक्षा प्रस्तुत की है और सभी कहानियों की मूल संवेदना एवं रचना शिल्प की समीक्षा करते हुए डॉ. खेमसिंह आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट की कहानियों में यथार्थ एवं आदर्श का सुन्दर सामंजस्य देखते हैं और आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट की कहानियों को प्रेमचन्द के निकट देखते हैं (पृ0 124)

चतुर्थ अध्याय ‘आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट का रेडियो नाट्य लेखन है जिसमें आनन्द प्रकाश के ‘दस्तक’ शीर्षक लघु-ध्वनि नाटक एवं ‘आजादी के आँसू’ रेडियो नाटक संग्रह की समीक्षा की गयी है।

पंचम अध्याय ‘आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट का शोधपरक साहित्य’ है। जिसमें शोध के अर्थ, अंग, शोध की पद्धतियाँ, शोध का महत्व आदि का अध्ययन किया गया है जो अवांछनीय प्रतीत हो रहा है। आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट के प्रकाशित शोध परक साहित्य - ‘भ्रष्टाचार कारण और निवारण’, ‘मेरे शोध पत्र’, ‘हिन्दी-सेवी रामविलास शर्मा’, ‘उदयभानु हंस की साहित्यिक उड़ान’, ‘उड़ गया हंस अकेला’ का विश्लेषण करते हुए सुचिन्तित निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं।

षष्ठ अध्याय आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट का गीतिकाव्य: एक अवलोकन’ में आनन्द प्रकाश की काव्य-प्रतिभा का विवेचन-विश्लेषण करते हुए समाज-सुधार एवं जनचेतना जागृत करने हेतु उनके द्वारा लिखे गीतों की समीक्षा प्रस्तुत की है। उपसंहार के अन्तर्गत सम्पूर्ण शोध-ग्रन्थ का समाहार प्रस्तुत किया गया है और अन्त में संदर्भ ग्रंथ सूची के अन्तर्गत आधार ग्रंथों, सहायक पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं की सूची देकर शोध-ग्रन्थ की प्रमाणिकता को बढ़ाया गया है।

समग्रतः लेखक की गंभीर शोधपरक दृष्टि ने ग्रन्थ को विशिष्ट बना दिया है। लेखक की उद्धरण बहुल शैली और स्तरीय भाषा से विषय स्पष्ट से स्पष्टतर होता गया है। इस पुस्तक के माध्यम से आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट को डॉ. खेमसिंह डहेरिया ने अपने श्रम एवं अध्यवसाय से नयी ऊँचाई प्रदान की है।

समीक्षक : डॉ. माया मलिक, 30/9-जे, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय परिसर, रोहतक-124001



कृति : लब्धू खसमाँखाणा
लेखक : नरेन्द्र लाहड़
विधा : उपन्यास
मूल्य : ₹ 150
प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन, दिल्ली

उपन्यास को जीवन की व्याख्या कहा गया है, जो जीवन की अनेक घटनाओं को समेटता हुआ कुछ संकेत देने का प्रयत्न करता है। नरेन्द्र लाहड़ उर्फ नदर जालंधरी की आलोच्य कृति 'लब्धू खसमाँखाणा' को भावुकता की कसौटी पर परखा जाए तो अति संवेदनशील हो जाता है। यह नष्ट होते जीवन मूल्यों के प्रति उनके भीतर बसे गहरे मौन की अभिव्यक्ति है। एक तरह से यह स्वयं से संवाद है। यह अवचेतन मन की परतों को उधेड़ता है और हौले से जीवन राग सुनाता है। पूर्व जन्म के बारे में भिन्न-

भिन्न धर्मों की मान्यताएँ अलग-अलग हो सकती हैं और धार्मिक आधार पर हमारे भी अपने-अपने मत हो सकते हैं। लेकिन यह भी सच है पूर्व जन्म की कल्पना मात्र से मन कौतुहल से भर जाता है।

उपन्यास में आरंभ में यही कौतुहल परजादेई व रामप्रताप की सातवीं कन्या सुखदेई उत्पन्न कर देती है और इसे अंत तक बरकरार रखती है। उसे अपने पूर्व जन्म की घटनाएँ याद होती हैं और भविष्य में होने वाली घटनाओं की भनक भी उसे लग जाती है। उपन्यास का नायक लब्धू पूर्व जन्म का उसका क्रांतिकारी साथी होता है; जो उनके साथ ही आजादी के आंदोलन में अपने जीवन का बलिदान देता है। आजाद भारत में वह भारतीय जीवन मूल्यों को बचाने के लिए संघर्ष करता है लेकिन आधुनिकता की आंधी में वह बेबस नजर आता है।

प्राचीन भारतीय दर्शन जिन्होंने हमें महान सभ्यताओं की श्रेणी में शामिल किया, उपन्यास के कथानक में समाहित हैं। धार्मिक सहिष्णुता, भाईचारा, माता-पिता और गुरु के प्रति सम्मान, देसी जड़ी-बूटियों जैसे नीम, तुलसी, चंदन, गोमूत्र व गायत्री मंत्र जैसे मंत्रों का यत्र-तत्र प्रयोग से यह उपन्यास भारतीय संस्कृति का दर्पण बन गया है। आधुनिकता की अंधी दौड़ ने युवाओं को अपनी चकाचौंध में उलझा लिया है। जिस कारण भारतीय युवा हमारी स्वावलंबन की नीतियों को छोड़कर नौकरी के पीछे भाग रहे हैं। शहर की ओर अंधाधुंध पलायन ने युवाओं से संस्कार छीन लिए हैं। इसे लेखक ने उपन्यास के नायक लब्धू द्वारा विवाह के समय किया गया व्यवहार एवं उसके बेटे रवि द्वारा प्रेम विवाह के समय किए गए व्यवहार से समझाने का प्रयास किया है। दादी के अंतिम संस्कार पर रवि व चंद्र का न आना, आधुनिक भौतिकतावादी सोच को उजागर करता है। रवि का छात्रावास में नशे में पाए जाने पर लज्जित होने की बजाए इसे आज की जरूरत बताना, नैतिक मूल्यों के प्रति युवाओं की सोच को परिलक्षित करता है।

उपन्यास का कथानक छोटा परंतु धारदार है। लेखक अपने मंतव्य को स्पष्ट करने में पूरी तरह सफल रहा है। उपन्यास की भाषा सहज और सरल है। कहीं-कहीं पंजाबी शब्दों और कहावतों का प्रयोग इसे अंचल विशेष से जोड़ता है परंतु अंत में भारतीय दर्शन के प्रति उनकी चिंता इसे सम्पूर्ण भारत का घोषित करती है। लब्धू का हमारे नैतिक मूल्यों के प्रति विश्वास बहुत प्रभावित करता है। किंतु, अंत में उन्हीं के पुत्रों द्वारा जीवन मूल्यों का ह्रास किया जाता है। यह उनसे सहन नहीं होता है। जिस से दुखी होकर लब्धू पत्नी सहित भारत माता से विनती करता है, जिसे स्वीकार करते हुए भारत माता उन्हें अपने साथ धरती में समा लेती है। मनुष्य जगत की इन वक्रताओं के बीच उपन्यास में ग्रामीण बोली का सौष्ठव है। सदियों से चली आ रही बुद्धिपूर्ण कहावतें व उक्तियाँ हैं। सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास की उत्सुकता भरी पठनीयता है।

समीक्षक : महेन्द्र सिंह 'सागर', फतेहकुंज, एच.पी. पेट्रोल पंप के सामने, कोंट रोड, भिवानी (हरियाणा)

24 अप्रैल, 2022 : भव्य कवि सम्मेलन, बहादुरगढ़

हरियाणा साहित्य अकादमी एवं कलमवीर विचार मंच के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कवि सम्मेलन में दिल्ली, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के अनेक कवियों ने विभिन्न सामाजिक मुद्हों पर रोचक व सारगर्भित रचनाएं सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया। देश के जाने माने साहित्यकार ज्ञान प्रकाश विवेक की अध्यक्षता में हुए इस काव्योत्सव में हरियाणा ट्रेडर्स वेलफेयर बोर्ड के जिला अध्यक्ष अशोक गुप्ता मुख्य अतिथि व सीएम विंडो एमिनेंट पर्सन दिनेश शेखावत, युवा शिक्षाविद नेहा यादव, नप के पूर्व उपाध्यक्ष धर्मवीर वर्मा विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

मंचासीन अतिथियों द्वारा मां सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण करने व युवा कवयित्री सुनीता सिंह द्वारा प्रस्तुत सरस्वती वंदना से शुरू हुए इस कार्यक्रम का संचालन गुरुग्राम के हरियाणवी हास्य कवि सुंदर कटारिया ने किया। मुख्य अतिथि अशोक गुप्ता ने अपने संबोधन में संस्था द्वारा पिछले कई दशकों से किए जा रहे साहित्यिक आयोजनों का हवाला देते हुए इसे समाज को दिशा देने की दिशा में उठाया गया सकारात्मक कदम बताया।

काव्योत्सव में राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कवि ज्ञान प्रकाश विवेक, डॉ. चेतन आनंद, गाजियाबाद; रजनी अवनी, दिल्ली; सुंदर कटारिया, गुरुग्राम; विरेन्द्र मधुर, रोहतक; विकास यशकीर्ति व श्याम वशिष्ठ, भिवानी सहित सतपाल स्नेही, कृष्ण गोपाल विद्यार्थी, कुमार राघव, सुनीता सिंह आदि ने अपनी शानदार प्रस्तुति से खूब वाहवाही बटोरी। कार्यक्रम का समापन सभागार में उपस्थित सभी लोगों के सामूहिक रात्रिभोज के साथ हुआ। कवि सम्मेलन में सुनाई गई कुछ कविताओं की बानगी प्रस्तुत है—

वो जो धरती पे भटकता रहा जुगनू बनकर,
कहीं आकाश में होता तो सितारा होता।

—ज्ञान प्रकाश विवेक

छोड़ के सुख जो राजमहल का जंगल जंगल घूमे थे,
मात-पिता के चरण जिन्होंने निज नयनों से चूमे थे।
जिन्होंने वन की धूल को समझा कि माथे का चंदन है,
ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु राम को वंदन है।

—रजनी अवनी



आओ मिलकर फसल उगाएं रिश्तों की दोबारा,
रोशन हो जाए हर जीवन, दूर हटे अंधियारा।

—वीरेंद्र 'मधुर'

बस्ती में जहां देखो नज़र आते हैं पत्थर,
उठ-उठ के एक-दूजे से टकराते हैं पत्थर,
है ख्वाब तो हसीन कि मंदिर में सजेंगे,
छेनी की चोट से मगर घबराते हैं पत्थर।

—कृष्ण गोपाल विद्यार्थी

ये जो हमदर्दी दिखलाने वाले हैं,
फिर से कोई ज़ख्म लगाने वाले हैं।
पानी का धंधा करते हैं लोग यहां,
मैं ये समझा प्यास बुझाने वाले हैं।

—श्याम वशिष्ठ

समुन्दर बनके तो हरगिज़ तुम्हारा हो नहीं सकता,
मुझे दरिया ही रहने दो मैं खारा हो नहीं सकता।
मैं मिट्टी की तरह मिट्टी से जुड़ना जानता हूं बस,
मैं उस मगरूर अंबर का सितारा हो नहीं सकता।

—डॉ. चेतन आनंद

हर रिश्ते की अपनी-अपनी होती एक मर्यादा है,
कहीं गमों की बारिश है और प्यार कहीं कुछ ज्यादा है।
अलग-अलग रिश्तों की देखो, अलग-अलग परिभाषा है।

—सुनीता सिंह

मधुर शहनाई में हम काश गम के खार न बोते,
बनी जब लाडली दुल्हन, न आंसू हौसला खोते।
विदा होते हुए मुझको बड़ी लगने लगी बिटिया,
कहां जब पोंछ कर आंसू कि पापा यूं नहीं रोते।

—विकास यशकीर्ति

अब पत्नी के शब्द चुटीले, नहीं तीर से लगते हैं।
बासी चावल दूध डालकर मस्त खीर से लगते हैं।
पति सभी जो खोट निकाला करते भिंडी तौरी में,
अपने हाथ के जले भुने टिंडूडे पनीर से लगते हैं।

—सुंदर कटारिया



-ब्रह्म सरोवर घाट, कुरुक्षेत्र